महावीर (निबन्धमाला)

(श्री अखिल भारतवर्षीय पौरवाल महासम्मेलन का मुख पत्र)

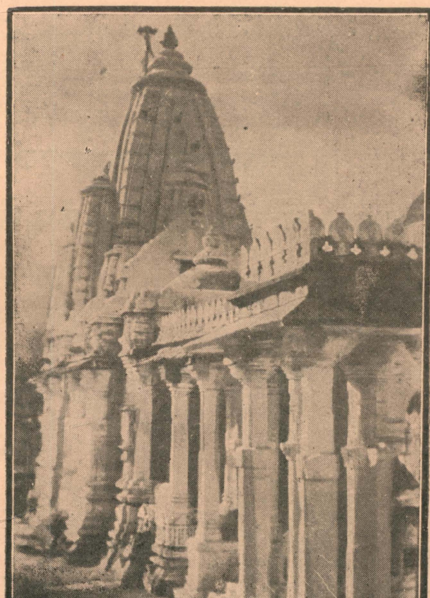

नांदिया निवासी पौरवाल वंशीय धनाशाह का बनाया हुआ
राणकपुर का जैन मन्दिर

वर्ष १-२] जनवरी से दिसम्बर सन् १९३४ ई० { अङ्क १० से १२ व
तथा जनवरी से अप्रेल सन् १९३५ ई० { १ से १२

सम्पादकगण—

ताराचन्द्र डोसी, सिरोही
भीमाशङ्कर शर्म्मा वकील, सिरोही
ऋषबदास जैन, शिवगञ्ज

प्रकाशक—

समर्थमल रतनचन्दजी सिंघी
महामंत्री-श्री अखिल भारतवर्षीय पौरवाल महा सम्मेलन
सिरोही (राजपूताना).

इसी छूटक अङ्क का मूल्य ।)
वार्षिक मूल्य मय पोस्टेज रु० १)

मुद्रक—
के. हमीरमल लूणिया,
दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर.

ॐ

महावीर

(निबन्धमाला)

निज देश हित करना सदा, यह एक ही सुविचार हो।
प्रचार हो सद् धर्म का, आचार पूर्वाचार हो॥

वर्ष १	वीर सं० २४६०, माह, फाल्गुन, चैत्र, जनवरी से मार्च सन् १९३४.	अङ्क १०, ११, व १२

विमल मंत्रीश्वर

(लेखक—शिवनारायण पौरवाल, [यशलहा] इन्दौर)

गुर्जर भूपति भीमदेव थे तेजोधारी।
शासन जिनका प्रजागणों का था सुखकारी॥
थे वे सद्गुण पुञ्ज, दया बल विक्रम वाले।
गर्व रहित सब शत्रुजनों को थे कर डाले॥ १ ॥

पाटण अणहिल वाड, इन्होंकी थी रजधानी।
उपमा स्वर्ग शिवाय नहीं कोई उसकी सानी॥
मंत्री मण्डल रहा इन्हों का अति बलशाली।
धीर वीर अति नीतिनिपुण निज आन निभाली॥ २ ॥

राज्य सभा के बीच "विमल" मंत्री कहलाये।
प्रकट "विमल" से किन्तु उन्होंने गुण थे पाये।
सज्जन रूप चकोर समूहों को सुखदाई।
उनकी उज्वल कीर्ति चांदनी सी थी छाई॥ ३ ॥

सभी जगह उस समय वहां पर सुखही सुख था।
सब प्रसन्न थे नहीं किसी को कोई दुख था ॥
दुष्चरित्रता दृष्टि कोण में नहीं आती थी।
नहीं किसी की वृत्ति कुकर्मों पर जाती थी ॥ ४ ॥

पौरवाल थी ज्ञाति "विमल" अति पाप भीरु था।
काश्यप उसका गोत्र वीर रण में सुधीर था ॥
श्री देवी अर्द्धांगि सुगुणि अति रूपवान थी।
वर्ती जग में आन, दया अरु धर्म खान थी ॥ ५ ॥

"विमल श्री सुप्रभात" सकल गुर्जर ने गाया।
जन्म सफल कर लिया अतुल जस जग में पाया ॥
कुल देवी "अंबिका" हर्षयुत धन अति दीन्हा।
खर्चे अर्बों दाम * पुण्य अति संचय कीन्हा ॥ ६ ॥

गुर्जर भाग्याकाश स्वच्छ था अति प्रसन्न था।
था सब जगह सुकाल, अतुल धन और अन्न था ॥
फैल रहा परकाश विमलसा "विमलचन्द्र" का।
हटा रहा था अन्धकार जो गुर्जर भर का ॥ ७ ॥

धीर वीर उस समय सभी थे गुर्जर बासी।
"प्राग्वाट" अबके से थे नहीं रुग्ण विलासी ॥
ज्ञात्योचित ही कार्य सभी कोई करते थे।
प्राग्वाट हैं "प्रगट मल्ल" सार्थक करते थे ॥ ८ ॥

सब कोई उस समय प्रेम पूर्वक रहते थे।
कभी न कोई झूठ बात मुंह से कहते थे ॥
पंचायत में न्याय कार्य होता था ऐसे।
स्वयं धर्म ही राज न्याय करता हो जैसे ॥ ९ ॥

एक समय का ज़िकर भीम † ने हुकम सुनाया।
सिन्धु देश और चेदि देश का करो सफाया ॥

---

* असंख्यात रुपया। † भीमदेव, गुजरात के राजा।

"विमल" चला तत्काल सैन्य ले अपनी सारी ।
जा पहुंचा वह सिन्धु देश रिपु हुवा दुखारी ॥ १० ॥

सिन्धुपति भी अपनी सारी सेना लाया ।
तभी विमल ने उसी ओर निज अश्व बढ़ाया ॥
वणिक पुत्र को देख सिन्धुपति बोला ऐसे ।
भीमदेव की सूरत नहीं यहां दिखती कैसे ॥ ११ ॥

क्या पद्मिनी प्रतिज्ञा लेकर यहां आये हैं ।
या यहां पर कुछ भेंट और पूजा लाये हैं ॥
बोले विमल कुमार बात क्यों करते बढ़कर ।
हो कुछ बल और शौर्य दिखाओ रण में लड़कर ॥ १२ ॥

सिन्धुपती तत्काल हस्ति से* तीर चलाया ।
विमल युद्ध में कुशल शीघ्र वह वार बचाया ॥
मारा पीछा तीर शत्रु के मुकुट उड़ाये ।
कूद अश्व से जाय हस्ति पर मुश्क चढाये † ॥ १३ ॥

इसी तरह से चेदि देश पर विजय मिलाई ।
तथा मालवे पर फिर उसने करी चढाई ॥
मालव पति था भोज धार उसकी रजधानी ।
मार भगाया उसे नहीं दिल दहशत आनी ॥ १४ ॥

इस प्रकार से भीमदेव की धाक जमाई ।
साथ साथ निज बुद्धि शौर्य से कीर्ति कमाई ॥
इसी तरह से कई मर्तबा युद्ध किये थे ।
संहारे रिपु झुंड पैर पीछे न दिये थे ॥ १५ ॥

आबू पर्वत निकट नगर चन्द्रावति जानो ।
वहां का धुंधुक राज भोज ‡ का मित्र बखानो ॥
भीमदेव देव से रुष्ट होय जब विमल सिधाये ।
धुंधुक धांधल करी हुकम नहिं शीश चढाये ॥ १६ ॥

---

* हाथी पर से । † बांधलिया । ‡ धारापति भोजराज ।

विमल मंत्रि ने युद्ध किया उससे अति भारी ।
हारा धुंधुक राज हुवा पुनि आज्ञाकारी ॥
बर्ताई तंह आन उसे माण्डलिक* बनाया ।
सुनी भीम† ने बात विमल को तभी बुलाया ॥ १७ ॥

राज्य सभा में पुनः विमल इज्जत से आये ।
सिंहासन से उतर "भीम" ने हृदय लगाये ॥
झूँठे चुगली खोर और जो जलने वाले ।
भीमदेव ने तभी सभी तत्काल निकाले ॥ १८ ॥

इस प्रकार से विमल मंत्रि अति कीरत्ति पाई ।
पीछे कुछ दिन बाद धर्म में रुची लगाई ॥
संवत् एक हजार अठासी विक्रम जानो ।
"विमलवसिहि"‡ की मिती प्रेमयुत हिरदे आनो ॥ १९ ॥

लगा अठारह क्रोड़ लाख त्रेपन पर मानो ।
"फार्बस" किया वखान नहीं चित संशय आनो ॥
जिसको देखन हेत लांघ £ सागर को आवें ।
देख देख अति हर्ष युक्त हो कीरति गावें ॥ २० ॥

"जिन मंदिर" एक समय तीन सो साठ बनाये ।
उनमें के हैं वर्त्तमान अब "पांच" लखाये ॥
कुंभ नगर¶ के बीच होय शंका जा देखो ।
मिलें जीर्ण और शीर्ण खण्डहर अब भी पेखो ॥ २१ ॥

इस प्रकार से और अनेकों कार्य धर्म के ।
किये अटल हो दत्त चित्त से बड़े मर्म के ॥
कहांतक वर्णन करें कहांतक कीरती गावें ।
थकती है अब कलम थाह नहिं इसका पावें ॥ २२ ॥

हाय! दैव क्या हुवा किस तरह धीरज धारें ।
हो गया काया पलट किस तरह जाति सुधारें ॥

---

* मातहत राजा। † भीमदेव। ‡ आबू—देलवाड़े में विमल मंदिर। £ समुद्र पार करके। ¶ कुंभारियाजी।

एक समय जो जाति मौर सिर भारत की थी ।
वह ही हो रहि आज क्षुद्र धन हीन घनीसी ॥ २३ ॥

कैसे उन्नति होय फूट हम में है भारी ।
रत्न प्रसू थी ज्ञाति आज हो रही भिखारी ॥
वे हैं हम से नीच ऊँच हम उनसे भारी ।
करते नहीं विचार जाति की करते ख्वारी ॥ २४ ॥

देव दयानिधि करो दया हम पर अब भारी ।
जिससे होवे नाश कुबुद्धि हमारी सारी ॥
"विमल" सरीखे रत्न हमारे में फिर होवे ।
उन्नत हो यह ज्ञाति समय अब वृथा न खोवें ॥ २५ ॥

समय कह रहा तुम्हें जल्द निद्रा को त्यागो ।
वरना होगा नाम शेष चित्त में यह पागो ॥
उन्नति की हो चाह ऐक्य की नदी बहाओ ।
शिवनारायण कहे शाख का भेद मिटाओ ॥ २६ ॥

ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

कन्या—विक्रय

कन्या-विक्रय यानी कन्या जिसको दी जाती है उसके पास से किसी न किसी रूप में एवज लेना ही कन्या विक्रय है। जैन, वैदिक, मुसलिम, ईसाई आदि दुनिया के सब धर्मों वाले कन्या विक्रय का निषेध करते हैं। बहुतसी जगह रिवाज चला आता है कि जिस जगह कन्या दी जाती है उसके घर का पानी तक नहीं पीते हैं। इसका तात्पर्य्य यही है कि जिस घर का पानी तक पीने में परहेज है उसके यहां से सैकड़ों हजारों रुपयों की थैली को हजम करना भी त्याज्य है। परन्तु मनुष्य लोभ के वश अपना भला बुरा कुछ नहीं देखता है अतएव लोभी मनुष्य अपना स्वार्थ देखने में कन्या के स्वार्थ को खो बैठता है। लोभ के खातिर जोड़ा न देख कर काणे कुबड़े, बुड्ढे लुचे, लफङ्गे आदि

किसी भी तरह की बुरी आदतों का विचार न कर उसका सोदा पक्का कर अपने आप नरक को प्रस्थान करने का पासपोर्ट ले लेता है और उसके जीवन की बरबादी कर देता है। ठीक है अब समय स्वतंत्रता का आया है अपने अधिकार में आये हुये को इस प्रकार खड्डे में धकेलना कहां तक चलेगा। अब चेत जाओ वरना आपका अन्याय अब नहीं चलेगा। कन्या आपकी शर्म कब तक रखेगी आखिर उसको आपके विरुद्ध होकर अपना न्यायपथ स्वीकार करना पड़ेगा। अतएव आपकी शर्म रहे और आपका अपमान न हो इस प्रकार अब आपका बर्ताव कन्याओं के प्रति होना चाहिये। कन्या–विक्रय रोकने के लिये निम्न लिखित बातों पर पूरा ध्यान देकर कार्य रूप में परिणित करना चाहियेः—

१—वृद्ध विवाह की रुकावट होनी चाहिये,

२—एक स्त्री के होते दूसरी स्त्री का विवाह न होना चाहिये,

३—पञ्चों के भारी लागा-कर भरने में रिहाई करना चाहिये,

४—वर विक्रय बंद होना चाहिये,

५—कन्या की शादी पर बन्धन रूप रिवाजों को तोड़ना चाहिये,

६—दहेज यानी दायजा अपनी शक्ति के उपरान्त न देना चाहिये,

७—विधुर को कन्या नहीं देना जिस प्रकार विधवा होने पर वह शादी नहीं कर सकती है उसी प्रकार विधुर भी शादी नहीं कर सकता है। कन्या विक्रय का विशेष प्रचार विधुर ही करते हैं इसकी पूरी रुकावट होनी चाहिये,

८— कन्या की १४ वर्ष और पुरुष की १८ वर्ष से कम उम्र की शादी नहीं होनी चाहिये।

बी. पी. सिंघी

पौरवाल समाज में सुधारों की आवश्यक्ता

पौरवाल समाज सब समाजों से सुधार मार्ग में पीछे है इसके लिये कई बार पौरवाल पञ्चों से प्रार्थना की गई फिर भी वे अपने ध्येय से इञ्च मात्र भी आगे नहीं बढ़ते हैं। चूंकि समय के साथ चलना जरूरी है वरना राष्ट्र संघ से

यह समाज दूर रह जायगा अतएव हमारे पौरवाल नवयुवकों से निवेदन है कि वे यदि समय के साथ चल कर अपने आपको समाज के बन्धन से छुटकारा कराना चाहते हैं तो आप उनको उनके स्थान पर छोड़ कर सामाजिक सुधार के क्षेत्र में आ डटें और कमर कस कर अपने पैरों पर खड़े होकर सामाजिक सुधार संगठन पूर्वक करना शुरू कर दें। निम्न लिखित सुधारों को कार्य रूप में परिणित कर दें किसी की राह देखने की आवश्यक्ता नहीं है।

(१) प्रत्येक युवक १८ वर्ष और युवति १४ वर्ष पहिले लग्न (व्याह-शादी) न करने की प्रतिज्ञा ले और इससे कम उम्र वालों की शादी में भाग न ले।

(२) बेजोड़ विवाह का विरोध करना और ऐसे विवाह में शामिल न होना।

(३) ३० से ४५ वर्ष तक की उम्र का युवक अपने से आधी उम्र से भी कम उमर वाली कन्या के साथ व्याह न करे।

(४) तड और पेटा ज्ञाति की मर्यादा को दूर करने की कोशिश करना।

(५) विधुर युवक कन्या के साथ लग्न न करे जब तक कि पौरवाल समाज में कन्या की बहुतायत न हो।

(६) रोटी व्यवहार वाली समाज के साथ बेटी व्यवहार शरू कर देना ताकि कन्या की कमी पूरी हो सके।

(७) प्रत्येक युवक स्त्री पुरुष के समान हकों के स्वाभाविक सिद्धान्तों का पालन करे।

(८) विधवाओं के साथ समाज का निष्ठुर बर्ताव जो होता है उसका विरोध कर उनकी बहतरी में सहकार देना।

(९) प्रत्येक युवक का फर्ज है कि वह समाज में होने वाले टाणे-मोसर-गामसारणी को रोके और उसका विरोध जाहिर कर ऐसे जीमण में शामिल न होवे और उसको सर्वथा बन्द कराने का प्रयास करे।

(१०) एक स्त्री के जीवित रहते दूसरा विवाह करे तो उसके साथ असहकार रखे।

(११) पौरवाल समाज में हुन्नर, कला, विज्ञान और व्यापारिक शिक्षण का प्रचार हो, उसके लिये एक ऐसी संस्था कायम करे कि जिसमें उपरोक्त बातों का अभ्यास कर स्वतंत्र धन्धा कर अपना निर्वाह कर सके।

(१२) प्रत्येक पौरवाल की सामाजिक स्थिति में सहायक बनना अपना कर्तव्य समझे।

उपरोक्त बातों को सक्रिय करने के लिये आप अपना संगठन कर एक युवक संघ स्थापित कर दें। इसके द्वारा समाज में नूतन भावना पैदा कर प्रचार कार्य करें। प्रत्येक कार्य व्यवस्थित करें। पृथक २ युवक बल को एकत्रित कर एक ही संगठित कार्य प्रणाली द्वारा प्रत्येक व्यक्ति सहयोग दे। समाज सुधार के कार्य में स्त्री वर्ग का सहयोग लेवे ताकि फलीभूत होने में जरा भी विलम्ब न हो।

पौरवाल सम्मेलन के प्रस्तावों को सक्रिय करने का सारा भार युवानों पर ही है अतएव आप अपना कर्तव्य समझ कर सुधार कार्य में नियमित आगे बढ़ते रहें। पीठ न दिखावें इसी में युवकों के साहस का परिचय है।

बी. पी. सिंघी

युवको समय तुमको आवाहन देता है

समय क्या मांगता है ?

(१) विनाशकारक कुरुढियों का विनाश चाहता है।

(२) विकास विरोधक ज्ञाति संस्था का नाश।

(३) असमान दाम्पत्य जीवन का नाश चाहता है।

(४) सर्व समाज-क्षयी वस्तुओं का भस्म करना चाहता है।

(५) कुलीनता के मिथ्या अभिमान का चूरा चूरा करना चाहता है।

(६) धर्मान्धता और उसके प्रेरक तत्वों का विनाश चाहता है।

(७) रूढी, व्हेम और पाखंड की बुनियाद को उखाड़ना चाहता है।

(८) निर्बलता का देशाटन और कलुषित वातावरण का नाश चाहता है।

(९) रोगों की चिकित्सा और उसका निदान चाहता है।

दम्पती धर्म

आजकल अक्सर गृहस्थ-जीवन कलह-पूर्ण और अशान्त देखा जाता है इसका मुख्य कारण विवाह-संस्कार से अनभिज्ञता है और यह अयोग्य विवाह का परिणाम है। योग्य लग्न पद्धति के विषय में पूर्वाचार्य्यों ने बहुत कुछ कहा है और वह सब पुस्तकों में ही रह जाता है। आज विचित्र रूढिवाद ने समाज को घेर लिया है और उसके परिणाम स्वरूप गृहस्थ संसार की जो दुर्दशा होनी चाहिए वह हमारी आँखों के सामने साफ साफ नजर आ रही है। धर्माचार्य्यों व महापुरुषों के बताये हुए गृहस्थ धर्म के संस्कारों में विवाह संस्कार यह एक रहस्य पूर्ण संस्कार है जिसका यथा विधि पालन किया जाय तो गृहस्थाश्रम निःसन्देह सुखसम्पन्न हो सकता है।

विवाह यह मौज शौक की चीज नहीं है परन्तु यह गृहस्थों के लिए एक धार्मिक संस्कार है और वह ईश्वर की साक्षी से प्रतिज्ञा पूर्वक किया जाता है। स्त्री बराबरी के दर्जे पुरुष का आधा अंग है। यह एक कपड़ा नहीं है कि मन नहीं माना तो उतार कर फेंक दिया जा सके; स्त्री, पुरुष की अर्धांगिनी, सहचारिणी धर्म पत्नी है। इन दोनों प्राणियों ने परस्पर एक दूसरे के साथ उचित कर्त्तव्य पालन करने की परमेश्वर की साक्षी से प्रतिज्ञा की है।

उत्तम शिक्षा की कमी तो समाज में शुरू ही से है उसमें फिर स्त्री वर्ग पर तो अज्ञान का बड़ा बादल छाया हुआ है। इस तरह अज्ञान की आंधी में पुरुष प्रायः स्त्री को सिर्फ अपनी क्रीड़ा वस्तु समझ कर बैठे हैं। यह दुर्दशा कर्तव्य ज्ञान नहीं होने की वजह से हो रही है और इसके परिणाम स्वरूप बेजोड़ लग्न, बाल लग्न और वृद्ध लग्न की धूम मची हुई है और ऐसे बनाव भी बनते जाते हैं कि कन्या को या बालक को यह खबर नहीं होती है कि विवाह क्या है? विवाह का उद्देश्य क्या है? तो भी ऐसी हालत में उनको विवाह की बेड़ी से जकड़ दिये जाते हैं। जिसके साथ सारी जिन्दगी रहना है उसका शारीरिक बन्धारण क्या है, वह रोगी है या स्वस्थ, सदाचारी है या दुराचारी? ये सब बातें जानने का अधिकार कन्या को नहीं है। मा बाप कन्या को जिसके साथ जोड़ दें उसके साथ उसको बिना छूं छा किये जाना पड़ता है। उसी तरह कुमार को भी जिसके साथ उसका सम्बध होने वाला है उसके विषय में उसको भी पहिले से कुछ भी

जानने का अधिकार नहीं है उसके गले चाहे जैसी बला लगा दी जाती है और उसको उससे चुपचाप स्वीकार करना पड़ता है।

इसका परिणाम बड़ा भयंकर आता है। यदि कन्या सुशीला होती है तो लड़का बुद्दु होता है। एक तरफ सौन्दर्य्य होता है तो दूसरी तरफ कुरूप होता है। एक तरफ ज्ञान शिक्षा होती है तो दूसरी तरफ जड़ता होती है। इस तरह स्वभाव आदि में भी विरुद्धता होती है। क्या ऐसे बेजोड़ लग्नों से गृहस्थाश्रम में सुख शान्ति हो सकती है? अक्सर लोगों को अपना संसार बहुत मुसीबत में और बुरी हालत में निबाहना पड़ता है।

आचार्य मुनिचन्द्र और हरिभद्र ने धर्म बिन्दु की वृत्ति में और आचार्य हेमचन्द्र ने योग शास्त्र में आठ प्रकार के विवाह बताये हैं जिनमें ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष और दैव इन चार विवाहों को धर्ममय बताते हैं। इन चार विवाहों में भिन्न २ तौर से कन्या दान दिया जाता है और गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच ये चार विवाह अधर्ममय बताते हैं। माता पिता की सम्मति बिना परस्पर अनुराग से मिलन करना गान्धर्व विवाह है, शर्त से कन्या का विवाह करना यह असुर-विवाह है, बलात्कार से कन्या का ग्रहण करना यह राक्षस विवाह है और सोती हुई या प्रमत्त, असावधान कन्या को उठाकर ले जाने को पैशाच विवाह कहते हैं। सिर्फ एक गान्धर्व को छोड़कर बाकी के तीन (आसुर, राक्षस और पैशाच) ये स्पष्टरूप से अधर्म मय हैं परन्तु गान्धर्व विवाह अधर्ममय नहीं हो सकता क्योंकि वहां पर पारस्परिक इच्छा है। कदापि आसुर, राक्षस और पैशाच विवाह में भी जो पारस्परिक इच्छा हो तो वह अधर्ममय विवाह धर्ममय बन जाता है। मुनि चन्द्राचार्य और हेमचन्द्राचार्य का कथन है कि विवाह का फल शुद्ध स्त्री का लाभ ही है, जब कि कुभार्य्या का योग ही सरासर नरक है। फिर इस विषय में विवाह का फल और कहते हैं—विवाह का फल यह है कि वधू की रक्षा करने वाले पति को अच्छी सन्तति का लाभ, चित्त की निराबाध शान्ति, गृहकार्य की सुव्यवस्था, सत्कुलाचरण, शुद्धि, देव, अतिथि बान्धवों का योग्य सत्कार लाभ। फिर जिन मंडन गणि कहते हैं कि गृह की चिन्ता के भार को दूर करना, अक्लमंदी की सलाह देना, साधु अतिथियों का सन्मान करना ये गुण जिस स्त्री में होते हैं वह सद्गृहिणी कहलाती है और वह निःसन्देह घर की कल्प लता है फिर उसी के

लिए कहते हैं कि समझदार संतोषी, मधुर भाषिणी, पति के चित्त के अनुसार कार्य करने वाली और कुलोचित रीति के अनुसार खर्च करने वाली सद्गृहिणी दूसरी लक्ष्मी है।

खराब जोड़ा होने के कारणों में एक खास कारण ज्योतिषी का जोश भी है उसके वचन में भोले मनुष्य बहुत श्रद्धालु होते हैं कि वर वधू कितने ही विषम क्यों नहीं हों एक दूसरे से विपरीत हों तो उनके विचार सिर्फ ज्योतिषी के जोश के आधार पर उनको लग्न ग्रन्थी में जोड़ देते हैं। जो युगल एक दूसरे से साफ तौर पर विरुद्ध दिखता हो अथवा जो साफ तौर से अयोग्य दिखता है उनको सिर्फ जन्म कुण्डली के मिलान पर लग्न योग्य समझा जावे अथवा उनको विवाह के योग्य समझना ही पहिले दर्जे की मूर्खता है जहां ज्योतिषी के जोश में ७० वर्ष के बुड्ढे के साथ १२ वर्ष की कन्या का मेल हो जाता है वहां पर उस ज्योतिषी की क्या कीमत समझना चाहिए ? कुण्डली की आड़ में बहुत से पण्डित कहे जाने वाले मनुष्यों की तरफ से बहुत अनर्थ हुआ करते हैं, इससे दम्पती जीवन पर दारुण प्रहार हुआ करता है यदि कुण्डली का उचित उपयोग किया जाय तो दिन दहाड़े ऐसी लूट नहीं चल सके वस्तुतः जन्म कुण्डली की अपेक्षा गुण कुण्डली को अधिक महत्व देना चाहिऐ।

प्राचीन काल में स्वयंवर प्रथा थी और वर वधू एक दूसरे के गुणों को जान कर अपने भविष्य जीवन को निश्चित करते थे और अखण्ड स्नेह श्रद्धा के साथ अपनी जीवन-यात्रा सफल करते थे। परन्तु आज वस्तु स्थिति बदल गई है, पुत्र पुत्री के संरक्षक अपनी इच्छा तथा सहुलियत के अनुसार विवाह करने लगे इसीसे उनकी सम्मति नहीं ली जाने लगी, तभी से अधिकांश दम्पती जीवन की कैसी दुर्दशा हो रही है जिसको पाठकगण अच्छी तरह से जानते हैं। स्त्री पुरुष में परस्पर मनो मिलन न हों, स्नेह श्रद्धा न हों और उनके घर के आँगन में कलह कोलाहल सदा चलता रहता हो, क्या इस जीवन को शान्त जीवन कह सकते हैं ?

हरएक विचारवान समझ सकता है कि विवाहिक जीवन को सुख मय बनाना यह सिर्फ पत्नी की बात नहीं है। जब तक पति पत्नी प्रयत्न न करें, और अपने आचार विचार का ध्यान न रखें तब तक उनको इस विषय में सफलता नहीं मिल सकती है।

जिस तरह स्त्रियों को सुधारने के लिये कहा जाता है उसी तरह पुरुष वर्ग को भी सुधार की लाईन पर आना चाहिए। वस्तुतः पुरुष यदि सुशिक्षित और सुसंस्कारित हों तो घर का अंधकार बहुत कुछ कम हो जाता है। स्त्री का सदाचार तेज उच्छृंखलता रूपी कांटे के बाड़ में फंसे हुए पुरुष तक पहुंचते कदापि देर लगे परन्तु पुरुष की धार्मिक रोशनी घर में उजेला करने को सत्वर सफल हो सकती है। बहुतसों का ऐसा भी मानना है कि पत्नी का अच्छा या खराब होना यह मुख्यतः पति पर ही अवलम्बित है एक अच्छी स्त्री को खराब पति खराब बना सकता है। पत्नी के जीवन दशा का बहुत सा भाग पति का बनाया हुआ होता है। कन्या पिघले हुए शीशे के सदृश्य है उसको पति जैसे सांचे में ढाले जाय वैसी ही वह बन सकती है।

यद्यपि पुरुष कितना ही अधिक आय रखता हो तो भी उसे अपनी पत्नी को मितव्ययी बनाने की आवश्यक बातें समझाना चाहिए। उचित कर्म खर्च से बचा हुआ द्रव्य भी एक तरह की आय है अपनी स्थिति और कुलीनता के अनुरूप खर्च रखना ही अपनी शोभा है।

गृह कार्य-भार स्त्री को चलाने का है, पीसना, पकाना और धोना ये स्त्री के लिए अच्छी से अच्छी कसरत है इसके लिए नौकर रखना और पत्नी सुख में बैठी रहे इसमें पत्नी के लिए शारिरिक और नैतिक दोनों तरह के गैर लाभ हैं यदि काम अधिक प्रमाण में हो और अकेली पत्नी से पूरा नहीं होता हो ऐसी हालत में नौकर रखना यह एक दूसरी बात है। हमेशा गृह कार्य का संपादन पत्नी की तरफ से ही होना चाहिए यह अधिक अनुबोधनीय है तथा हर तरह से लाभकारी है।

परन्तु आजकल अंग्रेजी फैशन और आजकल की सभ्यता ने भारत देवियों को और खास करके नगर वासिनियों को ऐसी शिथिल बनादी हैं कि उनको अपने हाथ से घर का काम काज करने से थकावट हो जाती है, शर्म आती है और उनको अपनी सभ्यता के विरुद्ध दिखता, है इस सभ्यता की लोफर भावनाओं ने नारी-जीवन को निर्बल बना दिया है। परन्तु आज गांवों की महिलाएँ परिश्रम और मेहनत का काम करती हैं जिससे वे हट्टी कट्टी दिखती हैं। तन्दुरुस्ती बल और उल्लास ये परिश्रम और मेहनत पर अवलम्बित हैं।

उद्भट फैशन की बुरी दवा से नारी जाति की बहुत खराबी हो रही है दूसरे अपने अंग दिख सकें ऐसे बारीक वस्त्र पहिनने में आनंद समझती हैं वहां पर नारीधर्म की उज्ज्वलता कितनी समझी जा सके? स्त्री का सच्चा भूषण शील-धर्म है उसके आगे दूसरे सब आभूषण तुच्छ हैं। पवित्रता, लज्जा और संयम ये अलंकार ऐसे सुन्दर हैं कि मोटे कपड़े से ढके हुए शरीर को भी चमकीला बना देते हैं और इससे प्रफुल्लित आत्मबल के आगे मनुष्य तो क्या देवता भी अपने मस्तक झुका देते हैं। सादगी में जो मजा और धर्म सिद्धि है वह उद्भटता में नहीं है। सादा खाना सादा पहिनना और सादा जीवन यह कैसा सुन्दर है। मोटा खाना, मोटा पहिनना और मोटा काम करना यह कितना मजेदार है। जीवन निर्वाह के योग्य प्राप्त करने में जहां कठिनता मालूम हो वहां गृह देवियों को फैशनेबल साडी और आभूषण पूरा करने में पति देवता को लोही का पानी करना पडता होगा। इसतरह पति को तकलीफ में डालना क्या सुशीला पति भक्ता पत्नी को शोभा देता होगा परन्तु जहां दुर्बल मन के पति को अपने धन के शरीर के अथवा आबरू के बजाय भी अपनी बीबी को उद्भटता से शृंगारने में रस पडता हो और इसमें वह अभिमान लेता हो तो फिर दूसरा क्या कहने को रह जाता है।

फैशन की बुरी आदत पडने से धन बहुत खर्च हो जाता है और उससे नैतिक शरीर पर बहुत आघात पड़ता है और साथ ही साथ देश की पराधीन दशा को बहुत सहायता मिलती है। इस पर युवक मित्रों को बहुत ही आवश्यक्ता है कोई विचारवान पुरुष देख सकता है कि देश की आर्थिक स्थिति बहुत ही दीन हो गई है निस्संदेह देश की अच्छी पैदायश का माल विदेशी ले जाते हैं तब देश के नसीब में सिर्फ छाछ का पानी रह जाता है ऐसी खराब स्थिति में फैशन आदि में मस्त रहना मूर्खता से क्या अधिक गिना सकता है? आय का बिलकुल साधन न हो और विलास प्रियता न छोडी जा सकती हो तो इसका परिणाम सिवाय लूट मचाने के क्या हो सकता है? अथवा दूसरे का माल हजम कर जाने का इरादा होता है निस्सन्देह एक बुराई से हजारों बुराईयां उत्पन्न होती हैं और एक सीढी चुक जाने वाला बिलकुल नीचे गिर जाता है।

आबरू-इज्जत को सही सलामत रखना यही बड़े से बडा शृङ्गार है। आबरू न रहे ऐसी फैशन या विलास सामग्री पर धूल डालना बेहतर है जिसकी

सादगी और गरीबाई की हालत में निश्चित वृत्ति है और इज्जत आबरू अच्छी हैं तो वह सादा गरीब मनुष्य भी भाग्यवान समझा जाता है। दरअसल देखा जाय तो खर्च योग्य नहीं कमाने वाला पुरुष कितनी ही विलास-सामग्री भोगते हुए भी उसके चित्त में शान्ति अथवा आराम नहीं होता है कि जो मजूरी करके पेट भरने वाले साधारण मनुष्य को कुदरत ने दिया है।

श्रीमान् लोग भी उत्तेजक फैशन से अपने घर में नैतिक मलीनता को स्थान न देते वाजबी शोभा रखें और अपनी लक्ष्मी का ऐसे खोटे रास्ते उपयोग न करते देशसेवा अथवा धर्मसेवा में अधिक उपयोग करें ताकि उससे जैन समाज को लाभ हो सके छोटी उम्र में बालबच्चों पर जो संस्कार डाले जाते हैं वैसा ही उनका जीवन घटित होता है। यही कारण है कि श्रीमानों के घर में बालक बालिकायें बचपन में ही फैशन की बुरी चलन में पड़ जाती हैं। अतःएव बड़ी उम्र में उनका जीवन कलुषित बन जाता है।

सुशीला पत्नी ऐसी होनी चाहिए कि अगर आधे से काम चलता हो तो पूरे के लिए अपने पति को तकलीफ में न डालना चाहिए और साथ ही साथ पति को भी अपनी पत्नी की तरफ ऐसा वात्सल्य भाव रखना चाहिए कि शक्ति अनुसार अपनी पत्नी को राजी रखने को आना कानी न करे। दम्पत्ती का जीवन व्यवहार परस्पर हार्दिक सहानुभूति और श्रद्धा-स्नेहपूर्वक चलने में उन दोनों का कल्याण है।

परन्तु जब पुरुष लोग ही उद्भट वेष-विन्यास पहिनें तब उनकी पत्नियों पर उनका कैसा असर होता है यदि वे अपनी पत्नियों को सादगी का पाठ सिखाना चाहते हों तो पहिले उनको यह पाठ खुद ही सीखना चाहिए तब ही उसका असर दूसरों पर हो सकता है।

पहिले कहा उसी माफिक अक्सर पुरुष के दुर्व्यसन उनकी पत्निओं में दाखिल होते हैं जो उनको आगे जाकर त्रास रूप हो जाते हैं। पति तो दुराचरण की अंधेरी रंग भूमि पर तामसिक खेल करता है और अपनी पत्नी को सदा-चारिणी बनाकर रखता है इसमें कितनी बड़ी असमझ है ? अपनी पत्नी को सदाचारिणी देखने वाले इच्छनार पति को सदाचारी बनना चाहिए। पति की दुराचारी हालत में पत्नी सदाचारिणी बनी रहे यह बहुत मुश्किल है और इस मुश्किली को पार करने वाली पत्नी निस्सन्देह वन्दन करने योग्य है।

पत्नि के गृह-कार्य में पत्नी-वत्सल पति भी यथा अवकाश मदद देने को तैयार रहता है यह उसका कर्तव्य और भूषण है। पत्नी की बीमारी की हालत में पति उसकी जितनी सेवा शुश्रूषा करें उसको सुखी निरोगी और निश्चिन्त बनाने में जितनी मेहनत करें उतनी कम है। प्रेम और स्नेह श्रद्धा की कसौटी समय पर होती है। पति की बीमारी में पत्नी उसकी सेवा में जिस तरह तन्मय बन जाती है वैसे ही पत्नी की बीमारी में पति को उसकी सेवा शुश्रूषा में सब तरह से तन्मय बन जाना चाहिए और यह उसका महान् कर्तव्य है।

साध्वी पत्नी की प्रिय में प्रिय वस्तु एक पति-प्रेम है उसको प्राप्त करने और उसको कायम रखने के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहती है। साथ ही साथ पति का भी यह महान् कर्त्तव्य है कि वह हृदय से अपनी पत्नी का उतना ही आदर रखे और उसको सदा प्रसन्न रखने का ध्यान रखे।

पत्नी की तरह अपने हार्दिक प्रेम का यथा सम्भव सब से बड़ा प्रमाण पति ही दे सकता है। वह उसको अपना समय दे, व्यापार धन्धा या नौकरी अथवा दूसरे कार्य से जो समय मिले उस समय को उसे अपने परिवार में बिताना चाहिए यानी उस समय में अपने परिवार को ज्ञान गोष्ठी का आनन्द तथा लाभ पहुँचाना चाहिए। उन मनुष्यों के लिए क्या कहा जा सकता है कि जो अपने बचे हुए समय में अपनी संगत का लाभ अपनी पत्नी या परिवार को न देकर दूसरी जगह भटका करते हैं कि जो आधी रात तक दूसरों के साथ गप्प सप्प लगाते हैं और सिर्फ भोजनादि के लिए घर आते हैं उनके लिए घर घर नहीं कहा जा सकता परन्तु उसको वीसी या उतारा कह सकते हैं। पति, पत्नी का या घर का जिस तरह मालिक है त्यों वह घर का शिक्षक भी है। अतः उसकी फुर्सत के समय में अपनी पत्नी और बाल बच्चों को संगत का लाभ देना चाहिए। सुशिक्षित पति की सोहबत में घर के परिवार को ज्ञान और बोध प्राप्त करने में जो आनन्द आता है वह आनन्द और किसी भी तरकीब से नहीं आ सकता। परिवार के बीच में पति द्वारा प्रेम पूर्वक की जाने वाली मनोरंजक ज्ञान-गोष्ठी घर में जो उजाला देती है वह अपूर्व आनंददायक होती है। पत्नी तथा बाल बच्चों को अपने गृह स्वामि के पास से अपने मन तथा आत्मा की खुराक मिलते ही उनका अन्तःकरण प्रसन्न हो जाता है और हृदय प्रफुल्लित हो जाता है।

जो लोग लोभ की वजह से सारा दिन काम धन्धे में मशगूल रहते हैं उनकी सुसंगति का लाभ उनके परिवार को नहीं मिल सकता इससे उस परिवार का जीवन शुष्क निरानन्दी और कदापि विपरीत संस्कार वाला भी बन जाता है।

बहुत से लोग तो फुर्सत मिलने पर भी उसका उपयोग या तो नाटक, सिनेमा व सर्कस देखने में अथवा दूसरों के यहाँ जाकर हुक्का गुड़गुड़ाने में या दोस्तों के साथ हिलने फिरने में अथवा टी टीफन लेने में करते हैं। ऐसी आदत वाले अपने घर को अपनी संगति का लाभ नियमित नहीं दे सकते और उसका परिणाम कदाचित यह आता है कि उनको गृह सुख से हाथ धो बैठने का वक्त आ जाता है।

यह स्वाभाविक है कि फुर्सत के समय में अपने समय को खर्च करने का मन वहीं होता है जहाँ अपना सब से प्रिय रहता हो, परन्तु इससे विपरीत जो लोग अपनी पत्नी और बाल बच्चों वाला अपना आंगन अलग रख कर अपने घर को अपनी संगति द्वारा लाभ नहीं देते हैं और दूसरी जगह व्यर्थ अपने समय को बरबाद करते हैं उनके लिए उनकी पत्नी और बाल बच्चों के हृदय में कैसे खयाल होते हैं वे अच्छी तरह से समझ जाते हैं कि उनके घर का मालिक उनको स्पष्टता से कह रहा है कि, "मुझे तुम्हारी संगति से दूसरों की संगति में ज्यादा आनन्द आता है," और फिर इसका जवाब उनको किस तरह से मिलता है? सारांश यह है कि घर की दुर्दशा का मूल इसमें से ही पैदा होता है।

पति का कर्त्तव्य है कि उसको अपना आचरण व्यवहार इस तरह से रखना चाहिए कि उसके विषय में उसकी पत्नी को सन्देह लाने के कारण न मिलें। इस विषय में स्त्री के अन्दर आत्मसम्मान का भाव ज्यादा होता है। दूसरी स्त्री की तरफ अपने पति का अनुराग देख कर उसके हृदय में दाह उत्पन्न होती है और इससे वह बहुत दुःखी होती है। इस तरह अपनी पत्नी के दुःखी होने का अवसर न उपस्थित हो उसके लिए पति का आचरण प्रेममय दयालु और कोमल होना चाहिए कि पत्नी के हृदय में यह प्रमाणित हो जावें कि उसके पति को संसार भर में अच्छी से अच्छी वस्तु वही है।

कदापि पत्नी के सम्बन्ध में कुछ अनुचित बात सुनी जाय तो उस पर पति को जल्दी नहीं करना चाहिए। जगत विचित्र है, लोक प्रवाह बेढब है। दुनिया दो रंगी है। प्रत्यक्ष भी झूठा निकल जाता है और भ्रान्ति, दृष्टिदोष, अज्ञान, असावधानता तथा ईर्षा, द्वेष और असहिष्णुता आदि दोषों के कारण भी अक्सर विचित्र अफवाह फैलने लग जाती है। इसलिए अति शीघ्रता करके अपनी पत्नी के साथ अन्याय करना सर्वथा पाप है। सारी अयोध्या नगरी ने राम-पत्नी सीता के सम्बन्ध में जो अनुचित बात फैलाई थी वह निस्सन्देह झूठी थी। इस तरह लोगों में अनेक विचित्र प्रकार की बातें फैल जाती हैं जो वास्तव में झूठी होती है, तो भी दुनिया का प्रवाह उस तरफ झुक जाता है। अक्सर पति, पत्नी के सम्बन्ध में भी संशय प्रकृति वाले होते हैं इससे अक्सर उनकी तरफ से उनकी पत्नियों को अन्याय मिलता है। अच्छे गिने जाने वाले पुरुष भी अक्सर उनकी पत्नियों पर उनके वहमी स्वभाव की वजह से अन्याय करते हैं। इसलिए ऐसे विषय में समझदार पति को जरा भी शीघ्रता नहीं करना चाहिए। गम्भीर हृदय से, वीरता से उसका निरीक्षण करना चाहिए।

कदापि साधारण भूल जो मनुष्य मात्र से हुआ करती है मालूम हो जाय तो पति को खामोशी धारण करना चाहिए और इससे उसकी आत्म उदारता का परिचय मिलेगा। वह पति खुद भी रोज ढ़ेर की ढ़ेर भूलें करता है अतः वे भूलें भी उसके हृदय में विलीन हो जाना चाहिए। सिर्फ उसको युक्ति पूर्वक प्रेममय शब्दों से अपनी पत्नी को इशारा कर देना चाहिए। विशेष भूल मालूम होते ही उसके मूल कारण की परिस्थिति मालूम करनी चाहिये। उस कारण में अपनी आत्मदुर्बलता का समावेष होता हो तो स्वयं को जागृत हो जाना चाहिये और विचित्र संयोगों में अच्छे अच्छों का भी पानी हो जाने का गम्भीर खयाल कर, मन को शान्त कर, अन्दर के प्रेममय रुख को सम्पूर्णता से सम्हालने के साथ २ बाहर से अप्रसन्नता और कोप का भाव दर्शा कर उसका उचित तौर से दमन करना चाहिए जिससे ऐसी भूल फिर न होने पावे।

पत्नी, पति की प्रियतमा और सच्ची प्रियतमा होने पर भी पति को उसका गुलाम या दास नहीं बनना चाहिए, अपनी विचक्षण दृष्टि, पौरुष तथा आत्म-सम्मान के भाव उसकी जानकारी से बाहर नहीं रहने चाहिए।

पुरुष की भूल जो पत्नी की दृष्टि में आवे वह उसके विषय में योग्य सूचना करे तो पति को भी शान्तिपूर्वक सुनना चाहिए। परस्पर की भूल होने पर एक दूसरे को कहने का अधिकार है और एक दूसरे को शान्ति पूर्वक सुनना तथा भूल से पीछे हटना यह दोनों का धर्म है, विचारशील पत्नी तो ऐसी बात को बहुत करके हृदय में ही समावेश कर लेगी और उसको प्रायः समय विचार कर वैसा करना भी चाहिए, क्योंकि पति पत्नी संसार रथ के दो चक्र हैं और दोनों चक्रों की बराबरी में ही रथ बराबर चल सकता है। भक्ति-शीला पत्नी की तरफ पति का भी हृदय उतना ही प्रेममय होना चाहिए कि जितना पत्नी का हृदय पति की तरफ प्रेममय होता है। यदि एक कठोर और दूसरा नम्र, एक सुगुणी और दूसरा दुर्गुणी एक रसिक और दूसरा निःरास, एक प्रेमी और दूसरा अप्रेमी, एक नीति सम्पन्न और दूसरा लम्पट हों तो ऐसे पति-पत्नी के गृह संसार को ब्रह्मा भी दूर से ही नमस्कार करते हैं।

सारांश–विवाह का फल यह है कि विवाहित दोनों प्राणियों के प्रेम तंत्री के नाद एक स्वर, एक राग और एक लय के साथ निकलने चाहिए। एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए शोभित पुष्पित बगीचे के दो सुकोमल फूल अभिभिन्न रूप से अपने अपने मन मोहन आमोद से फैलते विश्वेश्वर के श्री चरण में लोप हो जाते हैं।

लग्न

लग्न का पशु भाव यह है कि इससे समाज प्रवाह की रक्षा होती है और मनुष्य के लोहू मांस वाले शरीर की एक स्वाभाविक कमी दूर होती है।

लग्न का भाव यह है कि यह दोनों हृदय को एकत्र खींचता है, प्रीति और सद्भाव आदि से जीव को मधुमय करता है और दोनों हृदय को परितृप्त करता है।

लग्न का दैव भाव यह है कि लग्न प्रीति के सूत्र में गाठित होकर एक आत्मा को दूसरे के सुख के लिये अपना स्वार्थ भूलने की शिक्षा देता है। हृदय मनुष्य का सुख है उसका अनुभव करने में सहायता देता है।

जिसमें लग्न का यह बड़ा भाव लेने की शक्ति उत्पन्न ही नहीं हुई तो समझ लेना चाहिये कि उसकी अभी तक विवाह करने की उमर ही नहीं हुई।

लग्न की जड़ में प्रेम, प्रेम में श्रद्धा और श्रद्धा में ही एकता है अतएव इस देश में बीच में पड़ कर जो लग्न होता है वह खेल की वस्तु है।

युवान पुरुष और युवान स्त्री दश के साथ मिले और दश में से एक को पसंद करे ऐसा एक लग्न का खास नियम होना चाहिये।

प्रेम की परीक्षा किस प्रकार हो? प्रेम अंधा है सब स्त्रियों तथा पुरुषों में यह स्त्री या पुरुष श्रेष्ठ है, ऐसा अनुभव करने से प्रेम नहीं होता। प्रेम स्वार्थी है मैं उसको चाहता हूं वह दूसरे किसी को चाहता है यह सहन नहीं हो सकता। सर्वदा देखने की इच्छा होती है। क्यों उसको देखना नहीं चाहती? तो भी देखना चाहता हूं इसी का नाम प्रेम है।

अपने देश में प्रेम शब्द अपवित्र गिना गया है इसका कारण यह है कि प्रेम अपने देश में सर्वदा खराब आकार धारण करता आया है। लेकिन प्रेम स्वर्ग की वस्तु है। ईश्वर के हाथ से डाला हुआ स्वभाविक भाव है।

प्रेम से आकर्षित होकर जब पुरुष और स्त्री लग्न के सम्बन्ध से गठित होते हैं तब वे अपने २ सिर पर नाना प्रकार के कर्त्तव्य का बोझा लेते हैं। अपने सुख को भूलकर स्वामी वा पत्नी को सुखी करना, धीरज और सहनशीलता को धारण करके एक दूसरे का कसूर और अपराध माफ करने चाहिये, वात्सल्य और शासन के साथ बच्चों की रक्षा और शिक्षा आदि का सर्व बोझा उस समय लिया जाता है। जो ये सब भार लेने को असमर्थ हों अथवा लेना न हो तो वे लग्न कदापि न करें। इसलिये पुरुष या स्त्री का ऐसी ऊमर में विवाह न करना चाहिये जिस ऊमर में कर्तव्य का भार उठाने की या समझने की शक्ति न हो और वहन करने की इच्छा उत्पन्न हुई हो।

बालक अपने दुख सुख और भविष्य के भले बुरे के विचार नहीं कर सकते। जिस दिन से भले बुरे का विचार और इच्छा की उत्पत्ति हो वह दिन मनुष्य जीवन का एक बड़ा दिन है और समझना चाहिये कि लग्न करने के योग्य समय का आरम्भ हो गया है।

मनु ने लग्न को दो प्रकार की विधि बताई है। आठ वर्ष में कन्या को व्याह देना श्रेष्ठ है परन्तु यदि पिता किसी कारण से अपना कर्तव्य पालन न कर सके और कन्या का व्याह न कर सके, तो दूसरी विधि यह है कि कन्या युवा अवस्था में आने बाद तीन वर्ष तक पिता के घर में बाट देखे बाद अपने मन पसंद स्वामी के साथ विवाह करे। परन्तु हम छोटी ऊमर में कन्या को ब्याहना ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध समझते हैं जिससे दूसरी विधि का हम अवलम्बन करते हैं, क्योंकि पहिली विधि में कन्या में अपने भविष्य के अच्छे बुरे का विचार करने की शक्ति ही उत्पन्न नहीं होती।

प्रथम हम कह चुके हैं कि प्रेम की जड़ में श्रद्धा है। पश्चिमी विद्वान एमेर्सन कहता है कि एक लड़की प्रतिरोज दुकान पर खाने पीने का सामान मोल लेने जाती थी। उस समय बहुत से लड़के उसका ठट्ठा करते थे और हंसते थे इससे वह बाला उक्ता जाती थी। एक दिन उन छोकरों में से उस लड़की के हाथ से एक रुमाल गिरता हुआ देखा उसे देखते ही उसको उठाया उसमें रखी हुई चीजें बीन कर उस लड़की को दी। यह देख कर प्रेमका जन्म हुआ। जहां तक लघु चित्तता है वहां तक प्रेम बहुत दूर है। श्रद्धा से हृदय पूर्ण नहीं होता वहां तक प्रेम के चरणार्विम्ब नहीं पड़ते। इसीलिये जहां सत्य प्रेम है वहां नीच प्रवृत्ति को स्थान नहीं मिलता।

लग्न तीन तरफ से देखा जाता है:—

(१) ईश्वर की तरफ से (२) धर्म समाज की तरफ से (३) साधारण जन मंडल की तरफ से। प्रत्येक लग्न में ये तीनों बातें होनी चाहियें। ईश्वर का नाम लेना, धर्म समाज की पद्धति और नियम से चलना, जन मंडल के सामने लग्न करना।

जो पुरुष स्त्री को दम्भ से कहता है कि अपने में प्रेम उत्पन्न हुआ है तो ईश्वर के आगे स्वामी—स्त्री हैं। दश मनुष्यों को बुलाने की क्या आवश्यक्ता है? ईश्वर तो जानता है कि अपना लग्न हुआ है। इस प्रकार जो पुरुष कहता है वह स्वार्थी है क्योंकि वह एक स्त्री की हानि करता है क्या वह नहीं देखता? यदि वे लोग भय से ऐसा करने की इच्छा करें तो वे पुरुष अपदार्थ हैं। ऐसे पुरुष

की पत्नी होने को किसी भी स्त्री को तत्पर न होना चाहिये। असंकोच से ईश्वर और मनुष्य के सामने किसी स्त्री को स्त्री कह कर ग्रहण करने की जिसमें हिम्मत नहीं है वह पुरुष निश्चय नहीं चाहता। उसका मतलब यह है कि उस सम्बन्ध के मूल में निकृष्ट भाव है।

यदि जैन समूह ऐसे युगल को अपने शामिल करना न चाहें तो वैसा करने का उनको अधिकार है क्योंकि लग्न के समय जिसने जन समूह की परवाह नहीं की वे दूसरीवार शिकायत कर ही नहीं सकते।

पुरुष सैकड़ों प्रेम युक्त बातें करके कान का सुख दे तो स्त्री को उसे ऐसा कहना चाहिये, "धैर्य धारण करो, भद्रोचित और धर्म रीतिअनुसार मुझे धर्म-पत्नी समझ कर स्वीकारो। मैं बाद में तुम्हारे जीवन की संगिनी बनूंगी जिस स्त्री में ऐसा कहने की शक्ति उत्पन्न नहीं हुई, उसने दुःख सहन करने के लिये जन्म लिया है।

लग्न के पूर्व जो पुरुष गैर आचरण करने लग जाय, हे नारि! तुम बुद्धिवान हो तो निकृष्ट चाल चलने वाले पुरुष को पहिचानलो और जिस प्रकार घर में सांप से भय रखती हो उसी प्रकार उसका संग छोड़ो।

जिस प्रकार प्रेम करना नारी का कर्तव्य है उसी प्रकार विश्वास रखना यह उसकी प्रकृति है। बहुत से नीच आदत वाले और विश्वास घातक पुरुष इसी कारण से नारी को बड़ी विपत्ति में डालते हैं। मूर्ख और अपदार्थ स्त्री धर्म-नियम से अपने को शासन और रक्षा नहीं कर सकती उनको दुर्गति से कौन बचा सके।

लग्न करने वाली स्त्री! तुमको एक शिक्षा दी जाती है कि यदि प्रेम से गम्भीरता पूर्वक बन्धन में आ गई हो तथापि धीरता और लज्जा की सीमा का उलंघन मत करना। हलकी जाति के प्राणियों में भी देखोगे तो स्त्री जाति पुरुष को नहीं ढूँढ़ती। परन्तु पुरुष ही स्त्री को ढूँढ़ते हैं। यदि स्त्री प्रेम की इच्छा वाली हो तो उसका मान नहीं रहता। जिस प्रकार मच्छली का पेट चीर कर उसमें से आंत निकाल कर उसको स्वच्छ रखने पर भी मच्छली उसको देखने की इच्छा नहीं करती। उसी प्रकार जो स्त्री धीरता और लज्जा की सीमा उलंघन कर अपने छिपे भाव दस मनुष्यों के सन्मुख खुल्ले रखती है उसकी तरफ भी देखने की इच्छा नहीं होती। स्त्री की स्वछन्दता से बहुत से लग्न टूट गये हैं।

बहुत से पति स्त्री को धिक्कार देना सीखे हैं। हे मूर्ख कन्या! प्रेम के तत्व का स्मरण रख। लग्न करने वाले पुरुष! तुमको भी कुछ २ बातें कहने की हैं। तुम जिस प्रेम से आकर्षित होकर किसी स्त्री के साथ विवाह करने को तैयार हुए हो वह प्रेम वास्तविक में पवित्र अनुराग हो तो तुम उस स्त्री के मान, सुख व शान्ति पर नजर रखो। तुम जो उसकी सरलता और प्रेम को देख कर उसकी तरफ ऐसा व्यवहार करो कि जिससे जिस ज्ञाति में वह है और जहां उसको रहना पड़ता है उस ज्ञाति में उसको कलङ्क न लगे और लोक की निन्दा सहन न करनी पड़े और न मन की अशान्ति भुगतनी पड़े। यदि ऐसा है तो तुम मूर्ख हो अथवा बद मिजाज हो। तुम्हारा वह प्रेम सच्चा प्रेम नहीं है।

जहां सच्चा प्रेम है वहां लोग विचार करते हैं कि मुझे क्लेश हो तो भले हो परन्तु उसको सुखी करना। मुझे कठिनाई पड़े तो भले पड़े लेकिन उसको न हो। मुझे हानि हो तो भले परन्तु उसको लाभ हो। अगर ऐसा नहीं करता है तो उस पुरुष को धिक्कार है।

जिस में अपने आपको वश में रखने की जरा भी शक्ति नहीं है, उस पुरुष का चरित्र कौड़ी की कीमत का भी नहीं है।

जो एक दूसरे में श्रद्धा रखना नहीं जानते, एक दूसरे पर भरोसा नहीं रखते, एक दूसरे को हानि लाभ को नहीं देखते, एक दूसरे के कल्याण में धीरता, साधुता, व धर्म आदि में अपने संयम में नहीं रख सकते। वह विचार विना का लघुचित्तवाला कुशिक्षित और दुर्बल प्रकृति का पुरुष और स्त्री जिस ज्ञाति में है वे जाति के कलंक हैं।

लग्न अति पवित्र है, महान् है। इस कार्य में जो लघुचित्त वाला होकर प्रवृत्त होता है उनका ईश्वर पर विश्वास नहीं और धर्म पर अश्रद्धा नहीं होती है।

गृहस्थाश्रम

पुरुष महात्मा हो सकता है तो फिर स्त्री भी महात्मा हो सकती है? पुरुष महत्त्व की कक्षा पर है तो स्त्री भी क्यों न महत्त्व की कोटि पर होनी चाहिये। स्त्री ने ऐसा कौनसा दोष किया कि वह महत्त्व की कोटि पर नहीं जा सके क्या वह मनुष्य जाति में नहीं? क्या वह चरित्र पात्र नहीं है? क्या उसको

रत्नत्रय का अधिकार नहीं है ? क्या वह परम पद की अधिकारिणी नहीं है ? क्या पुरुषार्थ के कार्य पुरुषों के सदृष्य स्त्रियोंने नहीं कर बताये ? फिर क्या पुरुष ही महत्व के दर्जे हो सके और स्त्री न हो सके यह बड़ी ताज्जुब की बात है। पुरुषों ने ग्रन्थ लिखे, पुरुष ही शासन करते आये इस लिये पुरुष-महात्म्य कायम रहा और स्त्री-महात्म्य पर परदा पड़ गया। परन्तु इसका उल्टा नतीजा यह आया कि सारे देश पर आवरण छा गया और धर्मदीपक फीका पड़ गया युग धर्म का समय इस परदे को उलट करने की पुकार कर रहा है। आज बीसवीं शताब्दि का जमाना है कि इस परदे में भुजाई हुई आत्म शक्तियों को विकास में लाने का प्रयत्न करो।

हमको यह बात नहीं भूलना चाहिये कि स्त्री महात्म्य का दिवाला निकलने के साथ ही महात्माओं की पैदायश पर ढक्कन आ जाता है। निःसन्देह महात्माओं की पैदायश महात्मानियों से ही होती है कारण कि गुणों के अंग से प्रकट महात्म्य स्त्री और पुरुष के भेद को नहीं गिना जाता है। स्त्री जाति के सम्बन्ध में कम ख्याल रखने वाले को सम्बोधन देकर आचार्य भगवान हेमचन्द्र योग-शास्त्र के तीसरे प्रकाश के १२० श्लोक की व्रति में जो कहते हैं उसका अक्षरशः अनुवाद किया जाता है।

"स्त्रियों में सुशील भाव तथा रत्नत्रय का योग कैसे हो सकता है ? कारण कि स्त्रियें लोक में अथवा लोकोत्तर में तथा अनुभव से भी दोष पात्र के तौर पर प्रसिद्ध है। स्त्री एक तरह विष-कन्दली है, वज्रत्तर्नी है, व्याधि है, मृत्यु है, सिंहनी है, और प्रत्यक्ष राक्षसी है, झूठ, माया, कलह, झगड़ा, दुःख-सन्ताप आदि का बड़ा कारण है उसमें विवेक तो बिलकुल होता ही नहीं हैं इसलिये उसका त्याग दूर से करना चाहिये। दान, सन्मान, वात्सल्य उसके लिये करना योग्य नहीं हैं ? जवाब-दोष अक्सर स्त्रियों में देखे जाते हैं त्यों पुरुष भी क्या वैसे नहीं होते हैं ? पुरुष भी नास्तिक, धूर्त, घातकी, व्यभिचारी, नीच, पापी, तथा अधर्मी होते हैं तो भी पुरुष जाति खराब नहीं कही जाती, त्यों नारी जाति को भी खराब नहीं कहना चाहिये। सत् पुरुषों के सदृष्य सतियों की भी यश प्रशास्तियों मशहूर है। विद्वान लोग युवती के गौरव की इसलिये प्रशंसा करते हैं कि वह ऐसे कोई गर्भ को धारण करती है कि जो सम्पूर्ण जगत का श्रद्धेय गुरु बनता है। स्त्रियों ने अपने शील के प्रभाव से अनलादि कठिन उपद्रवों को विपरीत रुप में उतारने

के कौनसी कम मिसालें हैं? चतुर्वर्ण संघ में स्त्री का भी माननीय आसन है। सुलसा जैसी श्राविका के गुणों को स्वर्ग के सम्राटों ने भी गाये हैं और महायोगेन्द्र भगवान महावीर ने अपने श्रीमुख से प्रशंसा की है इस लिये स्त्री वर्ग भी दान, सन्मान, वात्सल्य के पात्र हैं। जननी के सदृष्य, भगिनी के सदृष्य, पुत्री के सदृष्य उनका वात्सल्य करना पुन्यकारी और कल्याणकारी है।"

उपरोक्त विवेचन से आपको यह विदित हो गया होगा कि आचार्य महोदय के ये उदगार स्त्रीजाति के गौरव पर कितना अच्छा प्रकाश डालते है। परन्तु आज अज्ञान दशा ने स्त्रीसमाज की शोचनीय दुर्दशा कर दी है। अज्ञान दशा का यह फल है कि अनेक हानि कारक रीति रिवाज, वेहम तथा ढोंगों ने उनके जीवन को निःमत्त्व बना दिया है। यदि उनके अन्दर जरा भी अक्ल होती तो ये स्त्रियें बीच बजार में मरने वाले के पीछे छाती पीटते नहीं निकलती। यह बात शर्म भरी है और इस दुष्ट रिवाज से कई एक स्त्रियों को क्षय और छाती के दर्द लागू हो जाते हैं और इसका गर्भवतियों के गर्भ पर बहुत खराब असर पड़ता है इस लिये रोने पीटने के रिवाज को सर्वथा बंध कर देना जरूरी है।

मृतक के घर पर बाहर गांव के लोग मंडली के रुप में दूर से पुकार करते हुए आते हैं और उनके साथ मृतक के घर वाली औरतों को भी परगिया लेने और छाती पीटना पड़ती है इतना ही नहीं परन्तु एक के बाद एक बाहर गांव के आने वाले मेहमानों के टोलों की वजह से गरीब के घर पर इतना सख्त बोझा पड़ता है कि उस के सुलगते हृदय पर गर्मागर्म तैल डाला जाता है। गरीब पति के मरने पर उसकी निराधार बाल विधवा एक कौने में रो रही है दुःख के सागर में पड़ी हुई वह बाला हृदयभेदक आक्रन्द कर रही है तब दूसरी तरफ बाहर से आये हुए घी में लब्धपता माल मलिदा उड़ा रहे है यह कैसी निष्ठुरता? क्या ये शोक जाहिर करने आये है कि माल झपटने आये हैं। उन्होंने सहानुभूति भी कहां बतायी है? सन्तोष अथवा शान्ति देने के बजाय वे उल्टा माल उडाते हैं कि जिससे दुःखियों के शोक सन्ताप को और अधिक उत्तेजन मिलता है काण मकाण जाने वाले रोने पीठने के अज्ञान-जाल या दम्भ-जाल बिछा कर उन दुःखियों को अधिक रुलाते हैं। रोने वाला ज्यों अधिक जोर के स्वर से रोये और छाती पीटने वाला अधिक जोर से छाती पीटे तो अधिक प्रशंसा होती है।

वस्तुस्थिति तो ऐसी है कि मरने वाले के पीछे आत्म-भावना करने की हो, वैराग्य भावना ने पोषण देकर जलते कलेजे को शान्ति देने के योग लोग देखाव के लिये अथवा रूढी वश होकर रोना अथवा पीटना महा मूर्खता का चिह्न है और महा-आर्तध्यान तथा दाम्भिकता है अलावा इसके पाप–बन्धन का भी कारण है।

उपरोक्त बातों से आपको मालूम हो गया होगा कि मरने वाले के पीछे खर्च करने की रीति अति दुष्ट है। मरने वाले की असहाय विधवा, या उसके गरीब भाई आदि की दीन हीन दशा की सम्हाल लेना या उनको सहायता पहुंचाना दूर रहा पर उसका थोड़े बहुत बचे बचाये धन पर भी खाली लोटा लेकर दौड़ना क्या मनुष्यत्व है। हे दया के हिमातियों सिर्फ लीलोतरी और सुकोतरी की भिन्नता में रह कर इस मानव दया करने के प्रसंग पर निष्ठुर व्यवहार का आचरण करते हो क्या यह तुम्हारे धर्म पर कलङ्क लगाने वाली बात नहीं है? वस्तुतः यह खर्च करने की प्रथा मिथ्यात्व के मूल में से पैदा हुई है इसलिये ऐसी निरर्थक और हानिकारक प्रथा को उखेड़ कर फैंक देना जरूरी है अलावा इसके जो धन खर्च किया जाता है उसको शक्ति अनुसार शिक्षा प्रचार में, सा धर्मिकों के उद्धार कार्य्य में अथवा परोपकार क्षेत्र में खर्च करना आवश्यक है।

खराब रिवाज फैलने का मूल कारण अज्ञानता ही है। स्त्री यह सृष्टि की माता है इसलिये उसकी अज्ञान दशा संसार के लिये भारी श्राप रूप गिनी जाती है। नारी जीवन में ज्ञान–दीपक का प्रकाश हुए बिना जगत का अन्धकार कभी दूर नहीं हो सकता। नौ महीने तक बालक को अपनी कुक्षी में रखने वाली माता है उसको जन्म देकर बड़ा कर पोषण करने वाली माता है। माता की गोद में बालक बहुत काल तक पलता है और उसी के अधिक सहवास से वह बड़ा होता है यही कारण है कि माता के संस्कार बालक में उतरते हैं। यदि माता सुसंस्कार वाली हो तो बालक के जीवन में अच्छे संस्कार उतरते हैं। माता के विचार, वाणि और बर्ताव ऊच हो तो उसका सुन्दर वारसा बालक को मिलता है। ऊच विचार वाली माता का ऊच वातावरण बच्चे को ऊचगामी बनाता है। और अकस्मात बीच में नहीं आवें तो उसका सारा जीवन-प्रवास आदर्श रूप बन जाता है निःसन्देह बालक बालिकाओं के सुधार का मुख्य आधार माता पर है इसलिये हर एक माता को अपनी जाति के लिये, अपने बच्चे के लिये और

अपने कुटुम्ब-परिवार तथा देश के लिये विचार, वाणी और आचरण में ऊंच बनना परम आवश्यक है और समाज तथा देश के कल्याण के लिये आशीर्वाद रूप है। परन्तु यह ऊंच आदर्श शिक्षा बिना नहीं आ सकता। अतएव स्त्री-शिक्षा की अति आवश्यकता है। पश्चात्य तत्त्ववेत्ता स्माइल्स कहता है कि—

"If the moral Character of the people mainly depends upon the education of the home-then, the education of women is to be regarded as a matter of national inportance."

अगर मनुष्य का नैतिक चरित्र मुख्यता गृह शिक्षा पर आधार रखता हो, तो स्त्री-शिक्षा का सवाल प्रजाकी आवश्यकता का गिना जा सकता है।

बच्चों का यह स्वभाव है कि वे जैसा देखते हैं वैसा करते हैं दूसरों के देखा देखी नकल करने को वे जल्दी झुक जाते हैं, घर में जैसा देखते हैं वैसा उनका जीवन गठित होता है। घर के मनुष्यों की बोल चाल और व्यवहार हलका हो तो बालक भी वैसा ही सीखेगा। स्कूल में उसको कितना ही अच्छा शिक्षण क्यों नहीं दिया जाय परन्तु घर की बुरी हवा के आगे रद्द हो जायेगा। स्कूल के संग से वह घर के संग में अधिक रहता है अतएव घर के आंगन में जो संस्कार घड़े जाते हैं वे स्कूल की शिक्षा से कभी नहीं घड़े जा सकते। बल्कि स्कूल में के मिलते सदाचार के पाठों को घर की अज्ञान-प्रवृत्तियें धो देती है। वास्तव में बच्चे के जीवन-विकास के लिये पहिली और सच्ची स्कूल जो घर गिना जाता है वह शिक्षा-सम्पन्न और चारित्र-विभूषित होना चाहिये स्माइल्स कहता है कि—

"Home is the first and most important School of character. It is there that every human being receives his best moral training or his worst."

घर यह चारित्र की पहिली और पूर्ण अगत्य की स्कूल है। मनुष्य अच्छी से अच्छी नैतिक शिक्षा अथवा खराब से खराब शिक्षा वहां से प्राप्त करता है।

आज की कन्यायें कल की माता हैं अतएव उनको पुस्तक ज्ञान की पूर्ण जरुरत है किन्तु गृह शिक्षा की, मातृत्व शिक्षा की और सदाचार शिक्षा की इस से भी अधिक जरुरत है। विद्या, शिक्षा और सदाचार, शील, संयम, और लज्जा, बल हिम्मत और विवेक, पति भक्ति और कुटुम्ब सेवा और अक्लमंदी ये स्त्री की रमणीय विभूति हैं। ललना का ललित लावण्य है, सुन्दरी का

सुन्दर सौन्दर्य है और सतीत्व का अच्छा सौरभ है। ऐसी कन्याएं जब योग्य उम्र पर योग्य पुरुषों के साथ लग्न ग्रन्थी में जोड़ायेंगी तब वे सच्ची गृहिणी बनेंगी वस्तुतः ऐसी गृहिणी ही गृह है और वह ही गृह का दीपक है ऐसी महात्मनी गृहिणी को उद्देश कर प्रखर विद्वान आचार्य श्री अमरचन्द्र सूरि कहते हैं। अलावा इसके इस कलत्र को श्री जिनसूर मुनि गृहस्थ का विश्राम धाम बताते हैं।

ऐसी गृहणियों के गृह मंदिर कैसे पवित्र होते हैं उनका आहार-विधि, जल, पान, वस्त्र परिधान और रहने की जगह कैसी स्वच्छ होती है, पति को अल्हादा देने में उनकी विनय भक्ति कैसी उज्जवल होती है, गृहस्थाश्रम सुख सम्पन्न बनाने में उनकी समय सूचकता और अक्लमंदी कैसी अच्छी होती है उनका आरोग्य-ज्ञान और बाल बच्चों को बड़े करने की जानकारी गृह परिवार और बाल बच्चों को लाभकारी होती है। और उनका सेवा-धर्म समाज और देश को कितना उपकारक होता है।

गृहस्थाश्रम ऐसे सती-रत्नों से निःसन्देह खिल उठता है। समाज शास्त्र-वेत्ता स्पेंसर कहते हैं कि विवाह का उद्देश यह ही है कि समाज और राष्ट्र की उत्कर्षावस्था चिरकाल बनी रहे जिससे दम्पती का, भावी सन्तति का और देश का कल्याण हो। सुप्रसिद्ध विद्वान अरस्तु (Aristotle) ने कहा है कि राष्ट्र की उन्नति या अवनति स्त्री की उन्नति या अवनति पर निर्भर हैं। युनानी लोग (Greeks) अपनी स्त्रियों को दासी के समान नहीं रखते थे परन्तु उनको राष्ट्र उन्नति में सहायक गिनते थे। उनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के कार्यों में दत्तचित्त रहते थे। यह ही कारण था कि वे बारबेरियन जाति को अपने स्वाधीन कर सके थे। ऐतिहासिक विद्वान गिबन लिखता है—रोमन राष्ट्र अपनी स्त्रियों के साथ ग्रीक लोगों से अधिक अच्छा व्यवहार रखते थे और यह ही कारण था कि रोमन राष्ट्र ग्रीक से अधिक बलवान बन गया था और ग्रीस को उसके सन्मुख अपना मस्तक झुकाना पड़ा था।

यह सुप्रसिद्ध बात है कि रोम ने एक छोटे शहर से उन्नति प्रारम्भ की बढ़ते २ सारी दुनिया पर अपना प्रभुत्व फैला दिया परन्तु रोम राज्य की उन्नति ज्यों विस्मयकारक है त्यों उनकी अवनति भी हृदय-द्रावक है। योग्य इतिहास-कार, टैसीरस कहता है कि—"रोमन जाति के उत्कर्ष के वक्त रोमन स्त्रियों के

पातिव्रत्य, स्वार्थ-त्याग, स्वावलम्बन्न, धैर्य आदि जो गुण दिखते थे वे सब उसकी अवनति के वक्त नष्ट हो गये थे। दुर्गुण दाखिल हो गये थे। इससे जर्मनों के आगे उनको दब जाना पड़ा था।

दो बातों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है (१) स्त्रियों की शिक्षा, मानसिक, धार्मिक तथा शारीरिक उन्नति और (२) किसी जाति या प्रजाका महत्त्व या गौरव। जब भारतवर्ष में योग्य मातायें थीं तब वे रत्न-गर्भा होकर योद्धाओं और ऋषियों को पैदा करती थीं परन्तु अब मूर्ख और बाल माताओं से प्रायः कायर और कलङ्कित कुपुत्र उत्पन्न होते हैं। कारण और कार्य्य! कारण को सुधार कर कार्य्य को सिद्ध करना अभी हमारे हाथ है।

मनुष्य, गाय, बैल, घोड़ा, कुत्तों के जोड़ों का मेल कराने के पहिले इनके कद, नस्ल, बल आदि अनेक गुणों पर अनेक सावधानी से विचार करता है और जाँच करके जोड़ा स्थिर करता है परन्तु अपने अथवा अपनी सन्तति के विवाह के वक्त वह ये सब उत्तम विचार भूल जाता है।

यह अज्ञानता का ही परिणाम है कि आज कल का गृहस्थाश्रम दिन ब दिन अधिक फीका होता जाता है। ध्यान रहे कि स्त्रियें केवल भोग-विलास के लिये नहीं बनाई गयी हैं, जो पुरुष स्त्रियों के शरीर तथा उनके सुख दुःख पर ध्यान नहीं देते हैं अपने ही सुख विलास के लिये खुद गर्जी से काम लेते हैं वे विवाह के अधिकार से बाहर जाते हैं और विवाह-शय्या को अपवित्र करते हैं ऐसे कामी पुरुषों के विवाह को अंग्रेजी में Married or legal Prostitution (व्यभिचार) कहते हैं। इसका परिणाम बताते हुए एक विद्वान् लिखता है कि—

जो प्रजा विवाह-शय्या को केवल भोग-विलास के लिये ही ठीक समझती है उसका विनाश अवश्यं भावी है।

जो विचार स्त्रियों को बच्चा पैदा करने की मशीन समझ कर विशेष संघ में लगे रहते हैं वे निःसन्देह मान भूल गये हैं वे स्वयं अपनी स्त्री के साथ खराब होते हैं परन्तु उनकी विषयान्ध दशा से पैदा होने वाले बच्चे भी मौत लायक होते हैं। पराधीन और गुलाम, दरिद्र और रोगी, अशक्त और कायर ऐसे इस देश में मुर्गे और कुत्तों की तरह सन्तति बढ़ाये जाना, इसमें आत्म द्रोह, पत्नी द्रोह, सन्तति-द्रोह, समाज-द्रोह और देश-द्रोह भी रहा हुआ है और यह बात खास

ध्यान देने योग्य है। जहां पति-पत्नी को पूरा हो उतना भी मुश्किल से मिलता हो वहां बाल-बच्चों का पोषण अच्छा कैसे हो सकता है। इसलिये बच्चे लूले-लंगड़े, कोढी-रोगी, वृद्ध-दुर्बल इन सब को विवाह में फँसाने का मन होता है और ऐसा करने से अपंग, अशक्त, रोगी सन्तान कर कैसा अनर्थ उपस्थित करते हैं। इस बात का उनको विचार नहीं आता है। ऐसे नालायक भी क्षणिक सुख के स्वाद के लिये विवाह करने लग जाते हैं। यह निःसन्देह गृहस्थाश्रम को नीचे लाने का कुकर्म है। ऐसा अन्धेर जितना हिन्दुस्तान में है उतना किसी सभ्य देश में नहीं है।

गृहस्थाश्रमी को कम से कम यह तो अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि अच्छी तरह से जितना पालन पोषण किया जा सके उतनी सन्तान से अधिक सन्तान नहीं करनी चाहिये।

कामान्ध दशा सन्तान की उत्पत्ति में भी कहां विचार रखने देती है एक तसवीर अथवा बर्तन का घाट उतारने में भी सावधानी की जरूरत पड़ती है। और यह बात समझ में अच्छी तरह से आ सकती है। रंगी, भंगी, शराबी, दुर्व्यसनी समय और स्थिति देखे बिना, आरोग्य अथवा प्रसन्न वृत्ति का ख्याल किये बिना, धीरज का लीलाम कर जिस तरह विषयानल में पड़ जाते हैं यह क्या संघ विधि है? ऐसी दुर्दशा में गर्भाधान हो तो सन्तति कैसी पैदा होती है? समझने की जरूरत है कि गर्भाधान तथा गर्भावस्था समय, संयोग और उस समय की विचार भावना सन्तति निर्माण में बहुत बड़ा भाग भजती है।

याद रहे कि गृहस्थाश्रम का अर्थ विषय संघ में लगे रहने का नहीं है इससे तो यह आश्रम कलङ्कित होता, बिगड़ता है। गृहस्थाश्रम का मुख्य हेतु यह है कि दम्पती परस्पर शुद्ध और पवित्र प्रेम को बढ़ा कर धर्म-साधन में और आत्मोन्नति के कार्य्य में एक दूसरे को अपनी २ शक्ति का लाभ देना चाहिये। दम्पती-युगल यह धर्मरथ या समाज-शकट की बैल जोड़ी है अर्थात् इन दोनों की शक्ति के योग से रथ या शकट की गति में वेग मिल जाना चाहिये और वे उन्नतिगामी होने चाहिये। जहां दो एके इकट्ठे होके ग्यारह होते हैं त्यों दम्पती की दोनों शक्ति इकट्ठी होके उसमें से महान् बल प्रकट होता है। उस बल का अधिक विकास उनके संयम पर अवलम्बित है। जितना अधिक ब्रह्मचर्य पाला जाय उतना पालने का खास फर्ज है। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से वे समाज को, देश

को, और धर्म को उपयोगी होंगे "पुत्र कामः स्वदाटेऽप्यधिकारी" इस प्राचीन सूत्रानुसार एक तेजस्वी बालक और बालिका को देश शरण में रख कर जो स्त्री पुरुष अपनी कामचेष्टा बंध कर देते हैं और निर्मल ब्रह्मचर्य मार्ग को अख्तियार करते हैं, वे गृहस्थाश्रम के ऊँचे शिखर पर बिराजमान हो जाते हैं और वे प्रजा के अन्दर महान् प्रकाश डालते हैं। ऐसे महान् आत्मा जिस देश को अपनी जीवन-चर्या से अलंकृत करते हैं वह देश भाग्यशाली गिना जाता है। यह गृहस्थाश्रम का ऊँचा आदर्श है। प्राचीन ऋषियों ने भी "धन्यो गृहस्थाश्रमः" आदि उक्तियों से इस आदर्श और महत्त्वपूर्ण गृहस्थाश्रम के गुण गान किये हैं। अतएव मनुष्य के पुनरुद्धार का मूल गृहस्थाश्रम के पुनरुद्धार में समाया हुआ है।

समय के प्रवाह में

ब्याह का कानून भावनगर में जारी हो गया

(१) ब्याह के लिये योग्य उमर पुरुष १८ वर्ष और स्त्री १४ वर्ष की रखी गई है।

(२) ४५ वर्ष तक का पुरुष ब्याह कर सकेगा। इस उमर के बाद कोई पुरुष ब्याह करना चाहे तो उसकी उमर से आधी से कम उमर की स्त्री अथवा कन्या के साथ ब्याह नहीं कर सकेगा।

उपर के दोनों कानून के खिलाफ जो बर्तेगा उसको तीन मास का कारावास और रु० ५०० तक का दंड होगा।

बाल-लग्न-निषेध

हमे यह जान कर आनन्द हुआ है कि काठियावाड़ प्रॉन्त में वांकानेर रियासत ने एक आज्ञा निकाली है कि कोई भी व्यक्ति १७ वर्ष के लड़के व १३ वर्ष कन्या की उम्र से कम उम्र में ब्याह शादी नहीं कर सकेगी। इस आज्ञा के विरुद्ध जो करेगा उस पर एक सौ रुपये का दण्ड (जुर्माना) होगा। हम उक्त रियासत को इसके लिये अभिनन्दन देते हैं और अन्य रियासतों को प्रार्थना करते हैं कि वे भी बाल-लग्न की रुकावट के लिये शीघ्र उपाय करें।

पौरवाल समाज में बाल विवाह की वंशावली

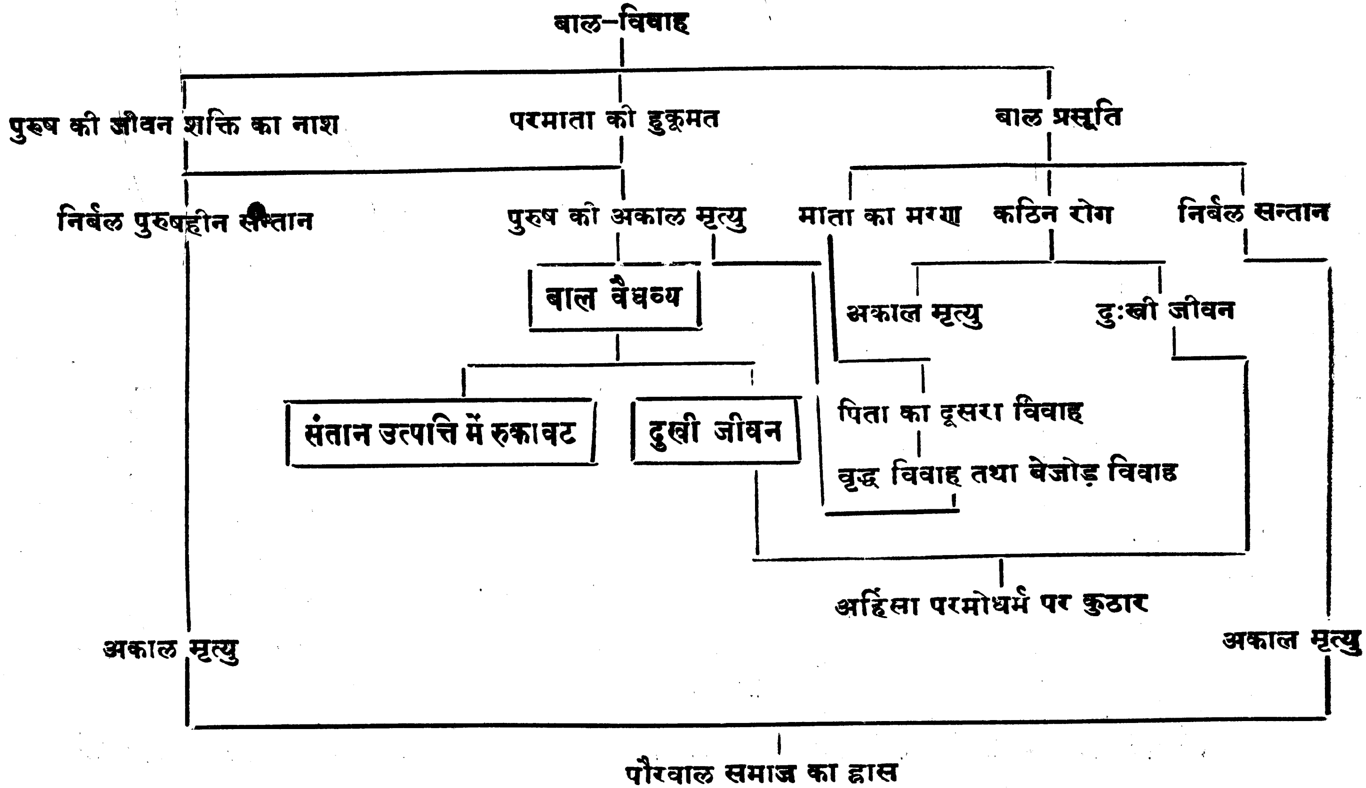

चीन में स्त्री-आन्दोलन

चीन में स्त्रियों ने आश्चर्य-जनक रीति से उन्नति-पथ पर कदम बढ़ाये हैं। २५ वर्ष पूर्व चीन की "सुन्दरियें" यह भी नहीं जानती थीं कि "घर से बाहर" भी कोई दुनिया है! सड़कों पर उनके दर्शन होना, एक आश्चर्य-घटना समझी जाती थी! कभी कभी मजदूर-स्त्री बाजार में जाती अवश्य दीख पड़ती थी! परन्तु अब? अब तो दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो गया है!—वे तो आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दर्शन देने लगी है!—वे ट्राम में बैठती हैं, सड़कों में सखी-सहेलियों के साथ मुसकुराती फिरती हैं, सिनेमा घरों को भी अलंकृत करने लगी हैं। यहां तक कि अपनी मोटर गाड़ियों को चलाने के लिये भी आगे बैठी हुई दीख पड़ती हैं।

चीन में भारत की भांति "पर्दा" का प्रचार कभी नहीं हुआ। दूसरी शताब्दि में श्रीमती पानचौ प्रसिद्ध इतिहास-लेखिका हो गई है। इतना ही नहीं यह देवी चीन की प्रसिद्ध कवयित्री भी हो गई है। १६ वर्ष के जीवन से इसने वैधव्य-जीवन व्यतीत किया था। शायद इसी वजह से इसके अन्तर-प्रदेश में वेदना ने काव्य का रूप धारण कर लिया था! परन्तु प्राचीन काल में कुछ अपवादों को छोड़ कर लड़कियों को "शिक्षा-शिविर" में प्रविष्ट होने का बहुत कम अवसर आता था! शिक्षा का सेहरा पुत्रों के सिर ही बांधा जाता था! उस जमाने में लड़कियों की शादी उन पुरोहित-पण्डों के द्वारा की जाती थी जो इस धन्धे को ही करते थे शादी होने के पूर्व चीनी कुमारी को अपने पतिदेव के दर्शन प्राप्त नहीं होते थे। चीन में पुरुष, स्त्रियों का तलाक कर सकता है परन्तु स्त्री, अपने पति को तलाक नहीं दे सकती। यहाँ तक, प्रथा थी कि यदि चीनी पत्नी मर जाय तो उसका पति उसकी शव-यात्रा में शामिल होने के लिये धार्मिक या सामाजिक-दृष्टि से बाध्य भी नहीं समझा जाता था! यह वर्षों पूर्व की बात है।

परिवर्तन का प्रादुर्भाव हुआ सन् १८०० से। उस समय से आज तक अनेक लड़कियाँ मिशन-स्कूलों में पढ़ने जाने लगी है। इतना ही नहीं, कुछ, विदेशों में शिक्षा-प्राप्त करने को पहुंची हुई है। इस समय इंग्लैण्ड, अमेरिका और फ्रांस

के विश्वविद्यालयों में कई चीनी छात्राएं अध्ययन कर रही हैं। चीन में भी कई लड़कियों के कॉलेज खोले गये हैं।

चीन के प्रसिद्ध वाइसराय ईसेनक्यू क्यूफेन की नातिनी ने चीन में स्त्री प्रचार में बड़ी सहायता पहुंचाई है। उसने स्कूल और कॉलेज की स्थापना और संचालन कर स्त्री-शिक्षा का आदर्श उपस्थित किया है। एक और प्रसिद्ध स्त्री-आन्दोलक है पेरिस से बैरिस्ट्री पास कर आनेवाली महिला मिस सूमीचेंग! इस देवी के विषय में कहा जाता है कि जिस समय वह बहस करने को खड़ी होती है तो "जज" दंग रह जाते हैं। अभी तक वह एक भी "केस" नहीं हारी।

स्त्री-अध्यापकों की गणना तो बहुत है। कई स्त्रियां डाक्टर, बैंकर और गवर्नमेन्ट-पदों पर भी नियुक्त हैं!

सन् १६११ से लड़कियों ने खुले हृदय से कार्य-क्षेत्र में आना शुरू किया है। इन शिक्षिता देवियों ने 'स्वतंत्र-प्रेम' का उपदेश किया! पहिले तो इनके पागल उपदेश का बड़ा दौर-दौरा रहा। परन्तु क्रमशः वे भाव दब गये! किन्तु यह विचार अब भी खूब प्रचलित है कि "लड़कियों का लड़कों के बराबर ही अधिकार हैं।"

अब देश भर में लड़कियों के स्कूलों की मांग हो रही है। अब स्वयम् लड़कियें भी अपने पति को चुनने लगी हैं! सरकार ने यहां लड़कियों को अपने भाइयों के बराबर ही हिस्सा लेने का हक दे दिया है। अब चीनी-स्त्रियें अपने पति को 'तलाक' दे सकती हैं!

कई स्त्रियों ने उग्र चण्डी का रूप भी धारण कर रखा है। कई लड़कियें साम्यवादी भी बन गई हैं। कई समुद्री-डाकुओं में शरीक पाई गई हैं। सन् १६२६ में एक चीनी-स्त्री-डाकू तो 'आतंक' की प्रतिमा समझी जाती थी। कई डाकू और लुटेरों के गिरोह में भी शामिल हैं। एक देवी ने एक पुरुष को इस लिये उड़ाया था कि वह उस पर आसक्त थी और उससे शादी करना चाहती थी!

आज चीनी-स्त्री 'नाच' में भी शरीक होती हैं। स्कूलों में गायन शास्त्र का अध्ययन भी करती हैं। सारांश में—वे आज 'परिपूर्णता' की ओर अग्रसर हो रही हैं।

मोन्टीसोरी पद्धति

और

डाक्टर मोन्टीसोरी

यदि हम यूरोप के शिक्षा के इतिहास की और ध्यान दे और साथ ही साथ वहां के शिक्षा फैलाने वालों की नामावली की तरफ ध्यान दे तो मालूम पड़ेगा कि उनकी नामावली में किसी भी स्त्री का नाम नहीं है। प्रथम ही प्रथम स्त्री शिक्षक (शिक्षा फैलाने वाली स्त्री) पैदा करने का मान इटली को है। डॉ. मोन्टीसोरी में मानववंशशास्त्री, शरीरशास्त्री, मानसशास्त्री, तत्ववेत्ता और स्त्री शिक्षा इन सब का एक ही स्थान पर दर्शन होता है। बालक और बालमगज के यह खास अभ्यासी है। स्वयम् अविवाहित होने पर वह माताओं की माता है और बालको की महान सरस्वती है। बालस्वतंत्रता के नये युग के प्रवर्तकनार तथा जड़वाद और पराधीनता की बेड़ी में से मनुष्य जाति के उद्धार का आरंभिक प्रयत्न करने वाली डॉ मोन्टीसोरी है।

डॉ० मोन्टीसोरी की स्थिति मध्यम है परन्तु वह संस्कारी माता पिता की इकलौती पुत्री है इसका जन्म इटली की स्वतंत्रता की लड़ाई के आखरी दिनों में ई० स० १८७० में हुआ था इसके कुटुम्ब को व्यवसाय अथवा परंपरा से शिक्षा से कोई सम्बन्ध न था। उन दिनों में स्त्रिऐं मुश्किल से ही पढ़ा करती थीं। इसीसे प्रतिभाशाली विद्यार्थिनी को सामाजिक बंधनों के सामने होना पड़ा और समाज सुधारक के तौर पर आगे जाना पड़ा। आगे चलकर उसी स्वातंत्रता की भेट सारे संसार के बच्चों को दी। उसी स्वतंत्रता की उसने बचपन ही में उपासना की थी। लोकमत को तोड़ने के लिये जिस आत्मबल और आत्मश्रद्धा की मनुष्य में आवश्यक्ता है वह बल और श्रद्धा डॉ मोन्टीसोरी में पहिले से ही थे और उसी के परिणाम स्वरूप अनेक विरोधी तत्वों के सामने लड़ी। आखिरकार वह सारे जगत के समक्ष एक अपूर्व आशीर्वाद के रुप में खडी रही।

ग्यारह वर्ष की छोटी उम्र में उसमें किसी भी कार्य को करने की उर्मि जग उठी उस समय इटली में स्त्रिऐं नीच कोटी में गिनी जाती थी अधिक से अधिक स्त्रियें शिक्षिका के व्यवसाय के लिये योग्य मानी जाती थी और व वही कार्य किया करती थी उस समय का समाज स्त्री जाति का दूसरे

धंधे में प्रवेश सहन नहीं कर सकता था-मेरीया मोन्टीसोरी ने पहिले तो शिक्षक के धंदे में प्रवेश होने का विचार किया परन्तु उस समय की प्रचलित शिक्षा के ढङ्ग में उसका मन नहीं लगा। अतएव उसने शीघ्रमेव इञ्जीनियरींग का अभ्यास करना शुरू किया। उस शाला में वह अकेली ही विद्यार्थिनी थी अतएव उसको विद्यार्थियों के शामिल रह कर विद्याभ्यास करने में अनेक दिक्कतें उठानी पड़ती थी। सुबह उसकी माता शाला में पहुंचाने जाया करती थी और शाम को उसका पिता उसकी शाला से बुला लाता था। वर्ग में उसको विद्यार्थियों से अलग बैठना पड़ता था। और उस दरवाजे पर पुलिस चौकी की व्यवस्था होती थी। परन्तु इन सब मुश्किलियों का वह कोई विचार नहीं करती थी कारण कि उसका लक्ष गणित-शास्त्र के अभ्यास में था। शाला तो एक मात्र साधन था। वह इस शाला में रह कर एक समर्थ गणितशास्त्री हो गई। समय के बीतने के साथ उसका मन डाक्टरी व्यवसाय की ओर झुका। इटली में उन दिनों में डाक्टरी अभ्यास के लिये स्त्री विद्यार्थिनी मेरीया मोन्टीसोरी पहिली ही थी। लोकमत उसके विरुद्ध था तो भी विद्यार्थियों की शाला में अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी उसने अपना अभ्यास जारी रक्खा और वैद्यक के लम्बे और कठिन अभ्यास के बाद रोम के विद्यापीठ की एम. डी. की उपाधि प्राप्त की।

उपरोक्त पदवी प्राप्त करने के पश्चात् सन् १८९७ ई० में रोम में सिर-दर्द निवारणार्थ अस्पताल में सहायक डॉक्टर के तौर पर उसकी नियुक्ति हुई। सुधरे हुए देशों की जोड़ में आने को इटली अभी प्रयत्न कर रहा था। यहां दूसरे देशों के माफिक संस्थाएं अभी स्थापित होती जाती थीं। इस स्थिति में शीघ्रमेव व्यवस्था करने के लिये उपरोक्त अस्पताल में पूर्ण बेवकूफों के साथ २ मूढ और मन्द बुद्धि वाले भी रक्खे जाते थे। युवान और उत्साही डॉक्टर मोन्टीसोरी ने बालकों के व्याधि का खास अभ्यास कर इस विषय में विशेष प्रवीणता प्राप्त की।

इस पागलखाने में जाते वक्त उसका ध्यान मन्द बुद्धि वाले और मूढ़ बालकों की ओर, जो कमभाग्य से बेवकूफों के साथ रक्खे जाते थे, आकर्षित हुआ। पचास वर्ष पहिले से सेगुइन द्वारा योजी हुई मन्द और मूढ बुद्धि के बालकों को सुधारने की पद्धति का उसने अभ्यास करना शुरू किया। सेगुइन के

विचारों के माफिक उसको मालूम हुआ कि बालकों में जो मन्दता है उनका उपाय औषध-विचार नहीं परन्तु शिक्षा ही है।

उसने अपने विचार सन् १८९८ ई० में टूरीन में जो शिक्षा परिषद् हुई थी, उसमें दर्शाये थे। उसके भाषण से शिक्षा के क्षेत्र में नया प्रकाश पड़ा और शिक्षा सम्बन्धी संसार में नई जागृति उत्पन्न हुई। मूढ बालकों को कैसे समझाना तथा उनको नई पद्धति से कैसे शिक्षा देना आदि विषयों पर रोम की विद्यापीठ में भाषण देने के लिये डा० मोन्टीसोरी को वहां के अधिकारियों ने आमंत्रण भेजा।

इसके बाद डा० मोन्टीसोरी निर्बल मन के मनुष्यों को सुधारने वाली संस्था की विद्याधिकारिणी हुई। इस वक्त डॉक्टर मोन्टीसोरी ने अपना वैद्यकीय धन्धा छोड़ दिया और इस नये कार्य क्षेत्र की ओर अग्रसर हुई। अभी तक दूसरी प्रवृत्तियों के साथ डॉक्टरी धन्धा थोड़े अधिक प्रमाण में किया करती थी और अपने घर पर खानगी तौर पर रोगियों को जो भयङ्कर व्याधि से ग्रसित होते उन्हें भी रक्खा करती थी। उनके पास निर्भयता से जाती थी और आधी पिछली रात को उमङ्ग से उठ कर उनको देखा भाला करती थी तथा कार्य भी करती रहती थी।

वह अपने काम में इतनी अधिक होशियारी रखती थी कि इतनी होशियारी से कार्य करते हुए उसका धन्धा बन्द हो जाने की सम्भावना थी। वह उसका कुछ ख्याल न कर मरणावस्था में पहुंचे हुए बालक को कभी नहलाने और स्वच्छ बिस्तर में सुलाने की जरूरत मालूम होती तो वैसा करने का खुद फर्ज अदा करती तथा वह दूसरे डाक्टरों के माफिक दवा लिख कर नहीं चली जाती थी। रोम के गरीब लत्ता में रहने वाली माताओं को सिर्फ दवा लिख कर देने से उसका असर कुछ नहीं होगा यह बात वह अक्षर २ जानती थी। अतएव वह बालक के लिये आवश्यकता की तमाम चीजें अपने खुद मकान से मंगा कर देती थी।

यदि किसी रोगी को कमाने की जरूरत हो और उसके पास कोई धन्धा न होता तो वह अपने खुद के खर्चे से रोगी को काम पर लगाती थी। यदि कभी

किसी का दर्द उसकी दृष्टि में आता तो उसको शीघ्र दूर करने के लिये वह अधिक प्रयत्न सब से पहिले करती। इसी तरह उसने अपने डाक्टरी जीवन को व्यतीत किया। भविष्य में उसका यह परोपकारी स्वभाव उसकी शाला के बालकों को बहुत ही उपकारक हुआ।

जिस तन्मयता से वह डाक्टरी का व्यवसाय करती थी उसी तन्मयता, एकाग्रता, खन्त और असाधारण उद्योग से उसने इस नये कार्य में अपना चित्त लगाया। सुबह आठ बजे से रात को सात बजे तक वह मन्द बुद्धि वाले बच्चों को सिखाने में अपना समय पूरा करती थी। सारा दिन उन बच्चों के उद्धार के लिये अपनी बुद्धि और शक्ति का अधिक से अधिक उपयोग किये बाद रात को एक विज्ञान-शास्त्री के सदृश अपने सारे दिन के कार्य की समालोचना करती थी और साथ २ अपने कार्य-अवलोकन और कार्य का नोट किया करती थी। इतना ही नहीं परन्तु अपने अवलोकन के परिणामों का वर्गीकरण किया करती थी और इस विषय में जिन २ लोगों ने पुस्तकें लिखी थीं और उन सब की पुस्तकों को ध्यान पूर्वक पढ़ा करती थी और अपने आविष्कारमें कौन २ से मददगार हो सकते हैं उनको ढूंढ़ निकालती थी। इस कार्य-पद्धति में ही उसके विजय का रहस्य छिपा हुआ था। ये दिन उसके लिये सम्पूर्ण शान्ति के थे। इन दिनों में वह अप्रसिद्ध थी और संसार उसको नहीं पहिचानता था। अतएव वह अपूर्व तल्लीनता और सुख से अपने प्रयोग किया करती थी। इसी समय में उसने लंडन और पैरीस जाकर मूढ़ बच्चों की शालाओं और प्रचलित पद्धतियों का स्वयं अभ्यास किया और अपने ज्ञान के आधार पर प्रचलित सिद्धान्तों से जो अधिक बुद्धि गम्य थे उनका भी अभ्यास किया। इस विचार से उसके अन्दर एक अजीब प्रकार की श्रद्धा उत्पन्न हुई और उसके अन्तर में एक नवीन दशा व नये कार्य में जाने की स्वयं स्फूर्ति हुई। शीघ्र ही उसने समधारण बालकों की शालाओं, उसकी व्यवस्था और उसमें चालू शिक्षा पद्धति का अभ्यास करने का निश्चय किया और साथ ही साथ रोम की विद्यापीठ में वह तत्वज्ञान के विद्यार्थी के तौर पर दाखिल हुई और प्रयोगिक मानसशास्त्र का विषय उसने मुख्यतः लिया। उसने बाल-मानस शास्त्र में स्नातक की पदवी प्राप्त की। अब उसने पुरानी शालाओं के देखने का और उनकी सड़ी हुई पद्धति का सम्पूर्ण ज्ञान हासिल करने का काम

हाथ में लिया। वह स्वभाव, शिक्षा और अनुभव से विज्ञानवेत्ता थी अतएव उसने शालाओं की स्थिति का अच्छी तरह निरीक्षण किया। शिक्षा-शास्त्र की अनेक पुस्तकें देखीं उनमें जो कुछ ग्रहण करने योग्य बातें थीं वे ग्रहण करती गई। लोम्ब्रोसो और सर्गी की पुस्तकें उसको अच्छी मालूम हुईं और उनकी उस पर अच्छी छाप पड़ी। उसके विचार घड़ने में वे सहायभूत हुईं। चालू शिक्षा-पद्धति के दोष और अपूर्णता उसको हस्तामलकवत् दृष्टिगोचर हुए। उसकी पीछे से लिखी हुई Advanced Montessori method Vol I के A Survey of Modern Education नामक प्रकरण में उस समय की शालाओं का अक्षर २ वर्णन दिया हुआ है। शिक्षा क्षेत्र में काम करने वाले हर मनुष्य के लिये वह पढ़ने योग्य है। इस प्रवृति में उसने सात वर्ष लगाये इसी समय उसने इटार्ड और सेगुइन के लेखों का अधिक अभ्यास किया। उन लेखों का मतलब बराबर समझा जाय इसलिये उसने फ्रेन्च भाषा में किया और उनको अच्छी तरह पढ़े और साथ ही साथ उन पर अच्छी तरह विचार किया। अब वह अपने विचारों को अमल में लाने का समय ढूंढती थी और इसी अर्से में उसको एक सुयोग प्राप्त हुआ।

इटली के गरीब लोगों के रहने का प्रश्न बहुत महत्त्व का हो गया था वे गरीब लोग गंदगी में सड़ते थे वे ऐसे खराब और संकुचित स्थल घरों में रहते थे कि जहां किसी भी तरह की मर्यादा नहीं पाली जा सकती थी। अलावा इसके सहज में ही नीति का भंग हो सकता था और यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इन लोगों के लिये खानगी जीवन का सदैव के लिये नाश हो चुका था। इस दुःख में से इन बेचारे लोगों का दुःख दूर करने का विचार इटली के एक वजनदार, बुद्धिशाली और देशाभिमानी रोमन साइनोर अेडो अेर्डो टालमीना के मन में आया। यह गृहस्थ रोमन स्थापत्य मंडल का अधिकारी था उसने इस प्रश्न का बारीकी से अभ्यास किया और किस तरह के घरों की रचना करने से गरीब लोग सुख से रह सकते हैं आदि योजना तैयार की। उसकी योजना सब तरह से सम्पूर्ण और संतोषकारक थी। सिर्फ एक मुश्किली थी। वह मुश्किली यह थी कि जब ये गरीब मा बाप अपनी आजीविका के लिये सारा दिन बाहर व्यतीत करे और उस समय पाठशाला में न जाने वाले छोटे बालक छूट

से घर में अकेले रहे और विशाल मकानों के दिवारों पर जीनो पर लकीरें करके बिगाड़ दें। छोटे बालक किस २ तरह की मस्ती से मकानों को खराब कर देते हैं उसको सब कोई जानते हैं। टालमोना के मन में यह विचार आया कि इस तरह से मकान खराब करने में आवे और उनको सुधारने के लिये किराये-दारों से पैसे लेने के बनिस्बत उतने ही पैसों के खर्च से बालकों को सारा दिन खेल कूद में रोके जाँय ताकि वे तोफान लड़ाई झगड़ा करने से बच जाय और यह जब ही हो सकता है कि इनको किसी अच्छे व्यक्ति के सुपुर्द कर दिये जाय अतएव उसने एक लत्ता में बालकों के लिये अलग कमरों की तजवीज की और वह किसी योग्य द्रष्य की शोध में रहा।

टालमोना को डॉ० मान्टीसोरी की प्रवृत्ति की खबर मिल चुकी थी उसने यह निश्चय किया कि मेरे काम में डॉ० मोन्टीसोरी उपयोगी होगी अतएव उसने डॉ० मोन्टीसोरी को समझाई उसने डॉ० मोन्टीसोरी से विनंति की कि वह इन बालकों को अपनी देख रेख में रक्खे और उनको उपयोगी प्रवृत्ति में लगा दे। डॉ० मोन्टीसोरी को यह बात पसन्द थी उसको अपने विचारों के अनुसार प्रयोग करने की इच्छा थी और उसके लिये विषयो की जरूरत थी और वे उसको इसी तरह से मिलने वाले थे अतएव उसमें टालमोना की विनंति स्वीकार करली और राज्य की नौकरी छोड़ कर गरीब लोगों के बालकों को शिक्षा देने का कार्य अपने हाथ में लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९०७ के जनवरी महीने में उसने प्रथम ही प्रथम बालगृह स्थापित किया। उस वक्त लोगों का ध्यान इस तरफ जरा भी आकर्षित नहीं हुआ था। डा० मोन्टीसोरी ने उन मंदमति बच्चों को शिक्षा देने के लिये भिन्न २ तरह से अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों के साधनों की योजना की। यहां उसने दो वर्ष तक (१८९८ से १९००) तक काम किया। इस कार्य में उसको अपूर्व विजय मिली।

एक समय एक ऐसा बनाव बना कि एक मंदबुद्धि बालक सार्वजनिक शाला की परीक्षा में साधारण बुद्धि के बालक से ऊंचे नम्बर और अधिक नम्बर से बहुत ही सहलाई से उत्तीर्ण हुआ। मूढ बालकों के लिये डॉ० मोन्टीसोरी की योजना-पद्धति से वह बालक शिक्षित था। इसके पश्चात् तो ऐसा कई दफा हुआ। जितने मूढ़ बालक परीक्षा के लिये भेजे गये उतने के

उतने सब साधारण बुद्धि के बालकों से अधिक अच्छी तरह उत्तीर्ण हुए। इन परिणामों से लोग आश्चर्यचकित हुए। जिन्होंने इन परिणामों को आँखों से देखे उन्होंने इस किस्से को जादुई किस्सा माना परन्तु डॉ० मोन्टीसोरी तो इस विचार में पड़ी थी कि अच्छी बुद्धि के तन्दुरुस्त और सुखी बालक इन मूढ़ अतन्दुरुस्त और कंगाल बालकों से बुद्धि में कम कैसे हुए और परीक्षा में उनका दर्जा क्यों नीचा गया। इस पर से उसको मालूम हुआ कि इस पद्धति से मूढ बालकों को इतना अधिक लाभ हुआ तो फिर इस पद्धति से सीखने वाले साधारण बालकों को अवश्य इससे अधिक लाभ होगा और उनकी प्रगति चमत्कारिक हो जायगी। उसने विचार किया कि जो पद्धति मन्द मति के बालकों के लिये काम में लाई गई थी उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं थी कि जो सिर्फ मन्द बुद्धि के बालकों के उपयोग में ही लाई जाय। यह पद्धति भी शिक्षा के सिद्धान्तों पर रची हुई थी और उन सिद्धान्तों का भी गरीब बालकों पर आविष्कार किया और इसमें उसको सम्पूर्ण विजय मिली। दूसरे वर्ष दूसरा बालगृह स्थापित किया। इस समय लोगों में डा० मोन्टीसोरी की कीर्त्ति फैल चुकी थी। दूसरा बालगृह स्थापित करने की क्रिया बड़ी धूम धाम से हुई। इस प्रसङ्ग पर डा० मोन्टीसोरी ने एक सुन्दर और मननीय व्याख्यान दिया था। यह व्याख्यान मोन्टीसोरी पद्धति नामक पुस्तक में प्रारम्भिक व्याख्यान प्रकरण में दिया है।

बिजली के सदृश डॉ० मोन्टीसोरी की ख्याति संसार में फैल गई। अभी तो बालगृह अधूरा था उसके कार्य की विगत अपूर्ण थी, सगवड़ और व्यवस्था पूरी न हुई थी और प्रयोग तो अभी जारी ही थे इतने में तो देश विदेश से शिक्षा के यात्री मोन्टीसोरी शालाओं को देखने को आने लगे। इसी अर्से में उसके Montessori Method नामक पुस्तक का अंग्रेजी में भाषान्तर हुआ और अंग्रेजी जानने वाली प्रजा का लक्ष इस प्रवृत्ति में एका एक बढ़ गया। आज तो इस पुस्तक का अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन, स्पेनीश, रशियन, पॉलीश, रूमानियन डेनीश और जापानी भाषा में भाषान्तर हो चुके हैं। यह पुस्तक शिक्षा के साहित्य में अद्वितीय है। इसकी भाषा बहुत ही असरकारक और प्रोत्साहक है इसको पढ़ते २ अनेक बार आँखों में से आनन्दाश्रु गिरते हैं। इसमें जाति अनुभव

और जाति महेनत का आबेहुब चित्र है। शिक्षा के ग्रन्थों में यह एक ऊंची कोटी का ग्रन्थ रह जायगा। इसमें जो नैसर्गिक प्रतिभा है, जो स्वयम् स्फुरणा है जो स्वतंत्र विचार की झलक और मीठाश है वह दूसरे बहुत कम ग्रन्थों में है। यह ग्रन्थ भावी प्रजा का बहुत बड़ा वसीयत ग्रन्थ है। शिक्षा की दुनिया में यह एक अमूल्य रत्न है। इस पुस्तक में स्थान २ पर नवजीवन का आदर्श भरा हुआ है। आजकल के देश २ के युगाचार्य भिन्न २ दृष्टि से प्रजाओं के उद्धार के लिये जो प्रयत्न कर रहे हैं उसी तरह के शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न का यह मूल पुस्तक है इस पुस्तक में जितनी भावना की उन्नति है उतनी ही विज्ञान की गहरी दृष्टि है।

आजकल मोन्टीसोरी पद्धति प्रसिद्ध है यूरोप, अमेरीका और दूसरे सभ्य देशों में इस पद्धति पर बाल मंदिर बढ़ रहे हैं। हिन्दुस्तान में भी इस पद्धति के अनुसार थोड़ी पाठशालाएं प्रयोग कर रही हैं।

अभी दो चार वर्षों से हर साल लंडन में डा० मॉन्टीसोरी चार महीने का अभ्यास क्रम रख कर मोन्टीसोरी पद्धति का तात्त्विक और व्यवहारिक परिचय देती है इसके अलावा स्थान २ पर जाकर इसी पद्धति पर व्याख्यान देती है। नई शालाएं स्थापित करती है और अपनी पद्धति का प्रचार इसी तरह करती है। गये वर्ष से आमस्टार्डम में से Call of Education नामक त्रिमासिक पत्र डाक्टर मोन्टीसोरी के सम्पादकत्व में प्रगट होता है अभी वह फ्रान्स, अंग्रेजी और इटालीयन इन तीन भाषाओं में प्रगट होता है।

इटली में मोन्टीसोरी पद्धति सीखने के लिये तीन वर्ष का अभ्यासक्रम का एक अध्यापन मन्दिर खोला गया है। लण्डन में मोन्टीसोरी सोसाइटी स्थापित हुई है उसकी तरफ से मोन्टीसोरी पत्रिका हर माह प्रकाशित होती है।

ज्यों डाक्टर मोन्टीसोरी के पूजक शिष्य और अनुयायी हैं त्यों उसके विरोधी भी हैं इन्होंने पुस्तकें लिखी हैं और खूब चर्चा की है डाक्टर मोन्टीसोरी का उन लोगों को एक ही उत्तर है कि मेरी शालाऐं देखो, जाति अनुभव करो, और बाद में मेरे सिद्धान्त में कितना सत्य है उस पर चर्चा करो। परन्तु ज्यों कभी विरोधी भी आशीर्वाद रूप बन जाते हैं त्यों डाक्टर मोन्टीसोरी के सम्बन्ध

में भी हुआ है। आज एक तरह से वह स्वयम् ही अपनी पद्धति अधिक प्रमाण में फैला रही है।

डाक्टर मोन्टीसोरी एक असाधारण प्रतिभाशाली स्त्री है। डाक्टर तत्त्वेत्ता और गणितशास्त्री के अलावा वह एक अद्भुत शिक्षा फैलाने वाली है। उसमें स्वयं स्फुरणा, सृजन शक्ति और शोधक बुद्धि की कुदरती बक्षिश है। इनका व्यक्तित्व इतना अच्छा है कि उसकी छाप हर मनुष्य पर पड़ जाती है इसके सहवास में आये हुए मनुष्य चकित हो जाते हैं। वह सुरूप है, आकर्षक है, तथा उसकी वाणी मीठी है उसकी वाणी में स्वाभाविक सरलता है। उसकी असाधारण शक्ति की वजह से सारे संसार की स्त्री जाति को अभिमान लेने का कारण हो सकता है। दुनिया में ऐसी प्रभाविक स्त्रिएं बहुत कम होगी।

वह स्वयम् प्रवत्तिमय जीवन व्यतीत करती है किसी भी राज्य के शिक्षा विभाग की वह अधिकारी नहीं है। जाहिर जीवन का उसकी सीख नहीं है जब बाहरी की जरूरत नहीं मालूम होती तब वह एकान्त जीवन व्यतीत करती है और अपने कार्यों में मशगुल रह कर स्थिर चित्त से प्रयोग करती है। उद्योग की तो यह प्रतिमा है वह अंग्रेजी नहीं जानती है सिर्फ इटालीयन और फ्रॉन्स भाषा जानती है। फिर भी दुभाषिया के द्वारा वह अंग्रेजी जानने वालों को मुलाकात देती है और अंग्रेजी पत्र व्यवहार तरफ भी लक्ष देती है। बहुत सी बहिने उसके पास रहती हैं उसके सहवास और शिक्षा से शिक्षाशास्त्र में पारंगत होने का प्रयत्न करती हैं। ये बहिने डा. मोन्टीसोरी को शिक्षा का साक्षात् अवतार मानती हैं और गुरु करके पूजती हैं।

डाक्टर मोन्टीसोरी का ज्ञान अगाध है वह इतना अधिक है कि कहते २ जीवन पूरा हो जाय। बालकों के विषय में वह इतना अधिक जानती है कि कदापि वह जगत को और उसके साथ रहने वालों की यह मान्यता है कि पूर्ण ज्ञान बता भी नहीं सकेंगी। उसकी शक्ति का अपव्यय न हो उसके लिये उसकी शिष्या सदा उसको सम्हालती हैं, लोगों के त्रास से उसको बचाती है और उसके कार्य के बोझे पर अंकुश रखती हैं, उसके ऊपर जो अयोग्य टीकाएं होती हैं उसमें से उसको बचाकर उसकी शक्ति का विकास अविच्छिन्नता से बढ़े और संसार को उसका लाभ मिले उसके लिये उसका हृदय से खूब बचाव करती हैं।

बालोद्धार के लिये डाक्टर मोन्टीसोरी के काम की अभी बहुत वर्षों तक जरूरत है।

डॉ० मोन्टीसोरी के पूर्वाचार्य

डॉ० मोन्टीसोरी के पूर्वाचार्य जॉनलॉक, कॉन्डीलॅक, पेरेरा, रूसी, इटार्ड और सेगुइन गिने जाते हैं। जॉन लॉक में मोन्टीसोरी के महानद के क्षीण प्रवाह का मात्र झरण है। कॉन्डीलॅक और पेरेराने इस झरण को कुछ विपुल कर नाला की प्रतिष्ठा दी। रूसो ने इसको नदी के रूप में ही परिणित कर दिया और इसकी दो सहायक नदीएं हो गई। एक में पॅस्टोलॉजी और फॉबल और दूसरी में इटार्ड और सेगुइन के प्रबल प्रवाह मिले। इन प्रवाहों का वेग जोर से बहा उनमें से आज मोन्टीसोरी महानद अस्खलित, अविचल, अद्भूत प्रवाह में शिक्षा की भूमिका पर बह रहा है हम लोग इस प्रकरण में इस महानद में जड़ मुख तक नहाने को निकले हैं। चरित्र कथन और उसका श्रवण पुण्य स्नान के बराबर है। जॉन लॉक से लगा के सेगुइन तक चरित्रों का लेखन एक सलंग मात्र प्रदेश है। इस में हम तीर्थ के भाव में विचरते हैं अर्थात् हमको मोन्टीसोरी महानद के दर्शन हों।

नोट—मोन्टीसोरी के 'सिद्धान्त विचार' इसी अङ्क में आगे देखें।

जॉन लॉक

जॉन लॉक का जन्म ई० सन् १६३२ में हुआ था और उसकी मृत्यु सन् १७०४ में हुई थी। उसका जन्म पहिले चार्ल्स के समय में हुआ था। इङ्गलेन्ड के समरसेट में उसकी जन्मभूमि है। उसके कुटुम्ब का धर्म प्यूरीटन था। उसने ऑक्सफोर्ड विद्यापीठ की एम. ए. की परीक्षा पास की थी। परीक्षा पास करने के थोड़े समय बाद कुछ समय के लिये उसने ग्रीक वक्कृत्व कला और तत्व ज्ञान के प्रोफेसर का काम किया था। इसके बाद उसने ३४ वर्ष की उम्र में वैद्यक विद्या का अभ्यास शुरू किया था परन्तु यह अभ्यास अधूरा रह गया और वह लॉर्ड एस्ली का खानगी मंत्री हो गया। यहां पर उसने कई वर्षों तक काम किया उसने अनुभव और वाचन के परिणाम से सन् १६६६ में

मनुष्य की 'समझ शक्ति' पर एक निबन्ध लिखा। वह अपने दूसरे कामों के साथ अपने शेठ के पुत्र और पीछे से शेठ के प्रपौत्र के शिक्षा पर दृष्टि रखता था। इस अनुभव के बल पर सन् १६८३ में उसने 'शिक्षा के विषय में कुछ विचार' नामक पुस्तक प्रकाशित की। दर असल यह पुस्तक इस विषय पर विशेष प्रभाव नहीं डालती है। एक गृहस्थ पिता के पुत्र के शिक्षा के सम्बन्ध में एक खानगी शिक्षक के विचारों पर रचा हुआ यह पुस्तक था। इसके मृत्यु बाद एक दूसरा पुस्तक प्रसिद्ध हुआ उसमें युवान मनुष्यों के शिक्षा के विषय में लिखा गया है।

यद्यपि इन पुस्तकों का प्रदेश बहुत छोटा था, तो भी इन पुस्तकों के विचारों का असर इङ्गलेन्ड और उसके आस-पास के देशों पर हुआ। उस समय एक शिक्षक के पास ५० से १०० विद्यार्थी अभ्यास करते थे। पहिले से निश्चित अभ्यास के अनुसार उनको पढ़ाया जाता था और शिक्षा पद्धति में सिर्फ गोखण-पट्टी ही मुख्य थी। व्यक्तिगत शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। समूह-शिक्षा की वजह से व्यक्तित्व पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। जॉन लॉक में डाक्टर की दृष्टि थी अतएव उसने मालूम किया कि ज्यों डाक्टर अपने रोगी की सेवा-सुश्रूषा करते हैं त्यों शिक्षक को चाहिये कि वह विद्यार्थी के स्वभाव और परि-स्थिति के अनुसार काम करे। लॉक कहता है कि ज्यों एक चहरे से दूसरा चहरा भिन्न होता है त्यों एक मन से दूसरा मन भिन्न होता है। ढूंढने पर बालक की ऐसी जोड़ नहीं मिल सकती कि जो शरीर मन से सम्पूर्ण मिलती हों। इसलिये हरएक बालक को व्यक्तिगत लिख कर शिक्षा देनी चाहिये। यहां पर व्यक्तिगत शिक्षा का विचार लॉक से शुरू होता है। व्यक्तिगत विद्यार्थी ही शिक्षा का असल विधेय है और यह बात उसकी एक पुस्तक से मालूम होती है। लॉक ने खानगी शिक्षा दी थी अतएव उसको इसका अनुभव था और उसमें से उसके विचार उद्भवित होते हैं।

आज तक दी जाने वाली शिक्षा समूहगत थी उसमें अधिक कठिनाई थीं और अनुभव से लॉक को निष्फलता ही दृष्टिगोचर हुई। अतएव उसने संसार के सामने यह सिद्धान्त रक्खा कि शिक्षा व्यक्तिगत ही होनी चाहिये और वह वस्तुतः सीखने वाले की इच्छानुसार होनी चाहिये।

न कि सीखने वाले को उसके अनुसार काम करना चाहिये। इसी विचार में आजकल की प्रयोगशाला का मूल है। सीखने के विषय से सीखने

वाला अधिक अगत्य का है। क्या सीखना ? क्या न सीखना ? इसका निर्णय सीखने वाले पर ही है न कि सिखाने वाले पर। बालकों को सिखाओ उसकी बनिस्बत बालकों के अनुसार कार्य करो यह आज के शिक्षा-शास्त्र की झांखी शुरूआत उक्त विचारों में हैं।

बालकों को स्वतंत्र शिक्षा देने के विषय में उसके विचार अधिक स्पष्ट और वजनदार है। वह कहता है कि 'जिस तरह तुम बड़े मनुष्य स्वतंत्र हो उसी तरह बालक भी स्वतंत्र हैं। वे जो कुछ अच्छा कार्य करते हैं वह सब उनमें से ही आता है वे स्वाधीन और सम्पूर्ण हैं यदि कोई काम अच्छा हो परन्तु यदि उस में उनका मन या रुख न हो तो उनके पास से वह कार्य मत कराओ। बड़े मनुष्य को भी पढ़ना और संगीत अच्छा मालूम होता है परन्तु जिस समय वह उसको करना नहीं चाहता है उस समय यदि उससे कराया जाय तो वह थक जायगा और उसका प्रयास निरर्थक चला जायगा। यही बात छोटे बालकों के विषय में भी है। बालकों में काम के लिये समय और ऋतु आता है उस वक्त वे सरलता से काम कर सकते हैं यदि यह समय बराबर पहिचाना जाय तो शिक्षा देने की झंझट मिट सकती है और बहुत समय तक परेशानी भरी मेहनत भी घट सकती है। यदि बालक अपनी मर्जी से सीखता न हो उस वक्त उसके वक्त का जितना व्यय हो और जितनी मेहनत पड़े उससे आधा वक्त और आधे श्रम से जब वह लहर में आजाय तब वह तीन गुना सीख सकता है। यदि योग्य परिस्थिति की योजना की जाय तो खेल में जितना आनन्द आता है उतना ही आनन्द उनको पढ़ने में भी आता है। अर्थात् पढ़ना खेल रूप और खेल पढ़ना रूप मालूम हो। स्वतंत्रता देने से बालक की असली कुटेव और कभी २ उसका मानसिक प्रवाह जाना जा सकता है। उसके ऊपर किसी की देख रेख है यह बात जब उसको मालूम नहीं होती उस वक्त वह पूर्ण खिल उठता है उस वक्त शिक्षक को चाहिये कि वह उससे पहिचान जाय। वह उस वक्त उसकी इच्छा माफिक घड़ सकता है इसमें के आखिरी शब्द जो कि आजकल की स्वतंत्रता की फोलीसोफी पर पानी फिराते दिखते हैं तो भी स्वतंत्रता के सिद्धान्त के मूल जॉन लॉक में है इसमें जरा भी संशय नहीं है।

तन्दुरुस्त शरीर में तन्दुरुस्त आत्मा ही निवास करती है इसी सूत्रानुसार वह पहिले शरीर की शिक्षा फिर मन की शिक्षा का क्रम रखता है। लॉक शरीर को

डाक्टर के तौर पर देखता है। शिक्षक और डाक्टर का सुयोग लॉक में है और खास कर इसमें डाक्टर मोन्टीसोरी का पूर्वाचार्यपन स्पष्ट है। यह हम लोगों ने देखा है कि मॅडम मोन्टीसोरी उत्तम वैद्य और मानसशास्त्री है। लॉक इन्द्रिय शिक्षा के विचार को भी स्पर्श करता है। परन्तु ये विचार स्पष्ट नहीं हैं। इन्द्रिय की निरोगी स्थिति करने में ही लॉक इन्द्रिय शिक्षा समाप्त करता मालूम होता है। उसका यह खयाल है कि यदि निरोगी इन्द्रिय को स्वाभाविक व्यापार करने का अवकाश मिले तो वह व्यापार ही शिक्षा रूप है। इन्द्रिय शिक्षा के विषय इतना भी पूर्वाचार्य के इतिहास से प्रगट होता है।

कॉन्डीलॅक

जॉन लॉक के बाद कॉन्ड़ीलॅक का जन्म १७१५ से १७८० में हुआ कॉन्ड़ीलॅक एक खानदानी फ्रेन्च कुटुम्ब का मनुष्य था। लॉक के विचारों की असर जिनके ऊपर होती थी उन में कॉन्डीलॅक मुख्य था। उनके विचारों में यह विशेषता थी कि सब शक्तियों में मुख्य शक्ति संवेदना शक्ति है अर्थात् इन्द्रिय द्वारा होने वाले बाहिर जगत के अनुभवों को ग्रहण करने की शक्ति है। उसने "विश्व के सम्पर्क में आते इन्द्रियों से होने वाले अनुभव" नामक पुस्तक लिखी है। यद्यपि कॉन्डीलॅक इन्द्रियों के अनुभव को मानसिक व्यापार के पाया रूप गिनते हैं परन्तु उसकी दृष्टि के आगे इन्द्रिय शिक्षा का आज जो अर्थ है वह मालूम नहीं होता है। परन्तु इससे उलटा उसका कहना यह था कि इन्द्रियों को खास शिक्षा देने की जरूरत नहीं है।

यदि छोटी उम्र में बारम्बार इन्द्रियों से बुद्धिपूर्वक कार्य लिया जाय तो इन्द्रियों का विकाश स्वाभाविक हो जाता है।

उसका मत इन्द्रियों को स्वतंत्र रूप से शिक्षित करने के बजाय अवलोकन शक्ति और तुलना बुद्धि से शिक्षित करने का था। यद्यपि कॉन्डीलॅक ने साफ तौर से इन्द्रियों को शिक्षित करने का नहीं लिखा है तो भी उसने यह प्रतिपादन किया है कि बौद्धिक शिक्षा में इन्द्रिय शिक्षा का ही आवश्कीय स्थान है और ये ही विचार उत्तरोत्तर रूसो ने कॉन्डीलॅक के विचारों से ग्रहण किये।

जेकब पेरेरा

कॉन्डीलॅक के बाद पेरेरा की गिनती आती है। पेरेरा के बाप दादों का मूल स्थान पोर्टुगीज़ था परन्तु उसका जन्म स्पेन में हुआ था और वह याहूदी था। अठारवीं सदी बहिरों और गूंगों की शिक्षा के लिये प्रसिद्ध है उस समय पेरेरा इस विषय का जाननेवाला एक माननीय मनुष्य हो गया था। अठारह वर्ष की उम्र में वह स्पेन से बोर्डों में किसी काम के लिये आया था वहां पर उसको जन्म से गूंगी एक युवति स्त्री का परिचय हुआ। उसके प्रेम ने इस युवक को बहिरों गूंगों को मुंह से बुलाने के लिये अपने जीवन का सर्वस्व समपर्ण करने का निश्चय किया। उसने इस कार्य की योग्यता प्राप्त करने के लिये वैद्यकीय विद्या का अभ्यास किया पश्चात् बहिरों गूंगों की पाठशाला स्थापित की। उसने अपना सफल प्रथम प्रयोग एक तेरह वर्षिय याहूदी बाला पर किया। धीरज और लगातार होशियारी से उसने अक्षरों का उच्चारण और थोड़े वाक्य बोलते सिखाया। उसके बाद १७४८ में एक दूसरे विद्यार्थी को शिक्षा दी और उसको पेरीस में विज्ञान समिति के सामने रजु किया। उसकी शक्ति से मुग्ध हो कर पंद्रवे लुइए ने उसको वर्षासन बांध दिया। १७५० ई० में उसने बोर्डों में बहिरों और गूंगों के लिये मुफ्त शाला स्थापित की। परन्तु वहां से वह दो वर्ष बाद पेरीस गया। सारे यूरोप में से बहिरे गूंगे यहां आते थे। उसके काम की योग्यता देख कर लण्डन की रोयल सोसाइटी ने उसको सभासद बनाया और वह १७८० ई० में मर गया।

पेरेरा की योजी हुई पद्धति के हालात का ख्याल नहीं मिलता है। परन्तु सेगुइन ने शोध करके उसके बहुत से सिद्धान्तों को मनुष्य समाज के सामने रक्खा है। हम लोगों की वाणी सुनकर बहरे और गुंगे नहीं बोल सकते हैं परन्तु वे हम लोगों को बोलते देख सकते हैं और बोलते समय हमारे मुंह से जो हलचल होती है। उन हलचलों को देखकर वे बोल सकते हैं। जिस तरह दूसरे लोगों को वे मुंह हीला कर विचार दर्शाते हुये देख सकते हैं इसका परिणाम यह है कि बहिरे गुंगे जो शब्द अपने कान से नहीं सुन सकते हैं उनको आंखों से सुनकर अथवा देखकर भी सीख सकते हैं और इस तरह वे कान के बजाय आंख को काम में ला सकते हैं।

पेरेरा ने यह ढूंढ निकाला है कि वाणी दो तरह से गम्य है। एक ध्वनि से और दूसरी आन्दोलन से। पहिली रीति मात्र कर्णगम्य है जब की दूसरी आन्दोलनक्षम त्वचागम्य है। उसकी कल्पना ऐसी थी कि साधारणतः मनुष्य आन्दोलन का अनुभव नहीं करते हैं और ध्वनि द्वारा वाणी सुनते हैं। परन्तु बधिर जो कि ध्वनि द्वारा सुनता ही नहीं वह आन्दोलन का ही अनुभव ले सकता है इसलिये यदि अमुक निश्चित ध्वनि के साथ उठते निश्चित आन्दोलन का अनुभव बहरों को कराया जाय तो इसका परिणाम आन्दोलन का अनुभव होते ही इसके साथ उठते हुये ध्वनि का बहिरे उच्चारण करेंगे। इस तरह ध्वनि में से आन्दोलन पर आन्दोलन में से वे ध्वनि क्रिया समझेंगे और वे भाषा बोलना सीखेंगे। इस तरह उसने विद्यार्थी को त्वरा से सुनते और इस श्रवण को बराबर सुनने माफिक उच्चारण करते तथा उद्गार निकालते सीखाया। इस तरह उसने गुंगो को बोलना सीखाया। इस पेरेरा ने उस वक्त के विज्ञान शास्त्रों को यह सिद्ध कर बताया कि स्पर्शेन्द्रिय के भिन्न २ स्वरूप मात्र हैं। स्पर्शेन्द्रिय की महिमा हेलन कॅलर की शिक्षिका सुलिवन एक लेख में इस माफिक वर्णन करती है " स्पर्शेन्द्रिय जो महेन्द्रिय है उसकी शिक्षा पर पूर्ण भार नहीं दिया गया है। समग्र त्वचा देखती है और सुनती है एकली त्वचा नहीं परन्तु सब हड्डी स्नायु और सारा शरीर यह कार्य कर रहा है। मानसशास्त्र और मानस-वंशशास्त्र कहता है कि श्रवणेन्द्रिय और चक्षुइन्द्रिय मात्र स्पर्शेन्द्रिय के विशेष नाम और रूप हैं। स्पर्शेन्द्रिय इन्द्रियों की माता है इसने अपनी विविध शक्तियों की वसीयत अपनी पुत्रियों को दी है। अंधे और बहिरों का उद्धार इस मातृ-शक्ति के विकास पर अवलम्बित है।

सारांश कि स्पर्शेन्द्रिय का विकास अन्धे और बहरों को सूर्य, सागर और तारागण के दर्शन कराता है।

पेरेरा के काम में से निम्न लिखित बातें मिलती है:—

(१) समग्र इन्द्री तथा प्रत्येक विशिष्ट इन्द्री की शिक्षा और विकास-क्षम है और विकास के परिणाम स्वरूप इसकी शक्ति अनेक गुनी और अनन्त हो सकती है।

(२) एक इन्द्री का व्यायाम दूसरी इन्द्री की सक्रियता का प्रेरक और परीक्षक है।

(३) सूक्ष्म विचारों और तुलनाओं आदि मानसिक व्यापार इन्द्रीगम्य अनुभवजनित है।

(४) इन्द्रीगम्य अनुभव (संवेदना) करने की शक्ति की वृद्धि में मानसिक विकास का मूल है।

पेरेरा ने अपनी शोध बहिरों और गुंगों के लिये की हैं परन्तु इसका साधारण शक्तिवाले बालकों के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाला रूसो हैं। रूसो बारम्बार उसके पास जाता था। पेरेरा के विचारों ने रूसो पर अजब असर की ऍमीली में अपनी शिक्षा सम्बन्धी रचनात्मक योजना करके रूसो ने पेरेरा को पुनर्जन्म दिया है ऐसा कहा जाय तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

रूसो

दूसरे समकालीनो के सदृश रूसो भी लॉक की प्रतिभा के परिचय में आया था। लॉक की शिक्षा के अनुसार स्वतंत्रता का स्थान देना शुरू किया था। रूसो ने इन विचारों को विशालता दी और शिक्षा के नये विचारों की नीव डाली। पॅस्टोलॉजी और फॉबॅले ने स्वतंत्रता के विचार के पाये पर शिक्षा के भव्य मंदिरों का निर्माण किया और शिक्षा के विचार का पुनरुद्धार किया। रूसो के यही विचार मोन्टीसोरी पद्धति के स्वतंत्रता के मूल में हैं। मोन्टीसोरी का बाल मंदिर इन विचारों की नीव पर नहीं हैं तो भी शिक्षा में स्वतंत्र विचार की प्रबल महिमा के लिये रूसो का पाहिले नमस्कार किये बाद ही दूसरे देवों को नमस्कार किया जा सकता है। रूसो के स्वतंत्रता के विचार नीचे माफिक हैं:—

"जन्म से मनुष्य स्वतंत्र है। स्वतंत्रता यह मनुष्य का लक्षण है। पूर्ण मनुष्यत्व उस में है कि जो पर प्रमाण में अथवा पर अभिप्रायो से आन्दोलित हुये बिना स्थिर रहता है, खुद की ही आँख से देखता है, खुद के हृदय से ही अनुभव करता है और जो मात्र स्वतंत्र प्रज्ञा का ही अधिकार स्वीकार

करता है इसलिये शिक्षा का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिये कि जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य अपना स्वाभाविक विकास कर सके और जीवन के मुश्किल संयोगों में सिर्फ स्वयंवृत्ति के अनुसार जीवन कार्य करें"।

रूसो ने शिक्षा के पुराने कीलों को अपने स्वातंत्र विचारों से हिला दिये। उसके विचार अस्पष्ट होने पर भी प्रबल नदी की तरह बहते रहे और इससे पुरानी रूढिएं टूट गईं और उसने स्वतंत्रता की इमारत निर्माण करने के लिये भूमिका तैयार की।

ज्यों मोन्टीसोरी के स्वतंत्रता का भूतकाल रूसो में देखते हैं त्यों मोन्टीसोरी पद्धति की इन्द्रिय शिक्षा की झांखी भी हमको रूसो के विचार में होती है। रूसो कहता है " बाहिर जगत का ज्ञान मनुष्य इन्द्रियों द्वारा करता है इसलिये मनुष्य को स्वयम् बाहिर जगत् के सम्बन्ध में यथार्थ रूप में लाने को अथवा उसका पूरे पूरा लाभ उठाने को इन्द्रियों की शिक्षा हॉसिल करनी चाहिये। इन्द्रियों के अनुभव में से बुद्धि का प्रदेश खुलता है। ज्ञान के मुख्य हाथ पैर हमारी इन्द्रीय ही हैं। विचार करने सीखने के लिये मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को काम में लाना सीखना चाहिये। यहां पर रूसो इन्द्रियों की शिक्षा का महत्त्व बताता है उस वक्त की किताबी शिक्षा को गिरा देता है और खेलों द्वारा इन्द्रिय शिक्षा देने की हिमायत करता है। रूसो इन्द्रियों को सिर्फ काम में लाने से ही मात्र इन्द्री विकास का होना नहीं मानता है। वह कहता है "इन्द्रियों का विकास अर्थात् इन्द्रियों के साधन से इन्द्रिय गम्य विषयों को यथार्थ तौर पर बोलने की शक्ति। मसलन एक मनुष्य को यह निर्णय करने का है कि कितना बड़ा लकड़ा रखने से झरने को पार करने में वह पुल रूप में काम दे सकेगा। जो मनुष्य आंख से बराबर अंदाजा कर सकता है और यह बता सकता है कि इतने बड़े लकड़े की जरूरत है। इस पर से यह साफ जाहिर है कि मनुष्य की आंख शिक्षित है। तरह २ के खेलों में जैसे कि टेनिस तीरंदाजी आदि में इस तरह की शिक्षा दी जा सकती है। जैसे की दो वृक्षों के बीच में झूला बांधने का है तो विद्यार्थियों को पूछना चाहिये कि कितनी रस्सी की जरूरत होगी? रूसो का मत है कि इन्द्री तीव्रता से अनुभव करती है उसमें उसकी शिक्षा पूरी नहीं होती है परन्तु उसको इस तरह के परिणामों की यथार्थता का खयाल हो

सकता है और उसी में उसकी शिक्षा का समावेश है। मोन्टीसोरी के इन्द्रिय शिक्षा में जो संस्कारिता अथवा सूक्ष्मता का विचार है वह रूसो में अस्पष्ट है। इन्द्रिय शिक्षा के साधन पर रूसो की पद्धति शास्त्रीय नहीं कही जा सकती।

इन्द्रिय शिक्षा में मोन्टीसोरी पद्धति का एकाकीकरण का सिद्धान्त रूसो में दिखता है परन्तु उसकी दृष्टि इस विषय में निर्मल नहीं है।

इटार्ड

मोण्टीसोरी के सच्चे पूर्वाचार्य इटार्ड और सेगुइन ही हैं। जो ज्ञान मंद-मति के बच्चों को शिक्षा से दिया जा सके वह समधारण बुद्धि के बच्चों को स्वयम् शिक्षण से दिया जा सकता है ये विचार इटार्ड और सेगुइन के प्रयत्नों के आभारी है। इटार्ड और सेगुइन पैदा न हुए होते वो यह पद्धति इतनी जल्दी जन्म नहीं पा सकती थी। मोन्टीसोरी पद्धति समधारण बुद्धिवाले बच्चों के लिये है परन्तु उसका आधार मूढ मंदमति के बालकों को देने की शिक्षा की फीलोसोफी पर है। इटार्ड ने सन् १७७५ ई० में ओरेइसन नामक गांव में जन्म लिया था उसका विचार कोई व्यवसाय करने का था परन्तु फ्रेन्च विप्लव की वजह से उसकी यह आशा बदल गई। लड़ाई में लश्करी दवाखानों में वह आसिस्टेन्ट सर्जन की जगह पर काम करता था। यहां ही उसको अपनी जीवन प्रवृत्ति हाथ लगी।

उसने २१ वर्ष की उम्र में पेरीस के बहिरों गूंगों की पाठशाला के वैद्य का काम शुरू किया। यहां उसको एक ११, १२ वर्ष का लड़का मिल गया यह लड़का मनुष्य के सहवास बिना अब तक जंगल में फिरता था उसकी आदतें मनुष्य को थकाने वाली थीं। पिंजरे में डाले हुवे पशु की तरह वह अपने शरीर को जरा भी स्थिर नहीं रख सकता था और ऊंचे नीचे किया करता था। उसकी सम्भाल रखने वाले पर भी वह प्रेम दृष्टि नहीं रखता था। उसके आस पास जो कुछ बनाव बनते थे उससे वह सदा बेखबर रहता था। उसकी इन्द्रियों की शक्ति पाले हुए जानवर से भी उतरते दर्जे की थी उसकी आँखे चकल वकल

करती थी और कुछ भाव उसमें से प्रदर्शित नहीं होता था। कोलाहल अथवा सुन्दर संगीत इन दोनों तरफ उसका कान सदा दुर्लक्ष रखता था। उसके नाक के लिये दुर्गन्धि सुगन्ध दोनों बराबर थी। बुद्धि के प्रवेश पर करीब २ अन्धेरा था। पशु की आवश्यक्ता के अलावा दूसरे विषयों में वह जरा एकाग्र नहीं हो सकता था। परिणाम स्मृति, विवेक, अनुकरण शक्ति अथवा ऐसी मानसिक शक्तियों का उसमें अभाव था। वह न पहुंच सके इतनी ऊंचाई पर खुराक रखा हो तो उसको लेने के लिये वह खड़ा नहीं हो सकता था। उसके आस-पास रहने वाले मनुष्यों के साथ सम्बन्ध बांधने को उसके पास कोई साधन न था, अर्थात् वह निशानी अथवा वाणी से अपना विचार नहीं बता सकता था। संक्षेप में वह पशु के बराबर अथवा उससे भी उतरते दर्जे का था।

कुदरती मनुष्य को देखने के लिये विज्ञानिक लोग इटार्ड के दवाखाने में आये परन्तु जंगली को देखते ही कुदरती भव्यता सम्बन्धी उनकी कल्पना उड़ गई। पिनेले ने कहा "यह बेवकूफ है इसको मनुष्य शिक्षित नहीं कर सकेगा।" इटार्ड युवक था और साथ ही साथ उत्साही था। पिनेल की चिकित्सा उसने स्वीकार की परन्तु उसके निदान का स्वीकार नहीं किया। उसने अपने विचार को पक्का किया कि यह जंगली अब तक मनुष्य से दूर रहा है इसलिये शिक्षा से वंचित है और वह शिक्षित हो सकेगा।

इटार्ड ने उसको शिक्षित करने का काम अपने हाथ में लिया। जंगली को शिक्षित करने के लिये इटार्ड के पास पांच वस्तुएं थीः—

१—जंगली असामाजिक है इसलिये उसको सामाजिक बनाना। उसको शुरूआत में जंगली हालत में ही रख कर उसके आस-पास सामाजिक संस्कारी वातावरण की रचना करना और उसके अनुसार अनुसरनार बनाना।

२—उसकी इन्द्रियों को खूब तीव्र उत्तेजना से उत्तेजित अथवा जागृत करना तथा लागनियों परत्वे करना।

३—उसके जीवन की नई आवश्यक्ता और बाहिर दुनिया के साथ के सम्बन्ध का विस्तार बढ़ा करके उसका विचार प्रदेश बढ़ाना।

४—उसको अनुकरण करने के फर्ज बता कर वाणी का उपयोग करते सिखाना।

५—थोड़े समय तक स्थूल हालतो पर मन के विकास को साधना और उसके द्वारा शिक्षा के विषय में उस विकास को काम में लाना।

इटार्ड ने उसको जंगली स्थिति में से सामाजिक जीवन में लाने के लिये पहिले पहल उसके लिये जंगली तौर पर कार्य करने की व्यवस्था कर दी। यहां तक कि जब यह मूर्ख पेरीस की गलियों में दौड़ता था तब उसके पीछे इटार्ड भी दौड़ता था लेकिन उसको बांध कर नहीं रखता। फिर भी इटार्ड को अनुभव से पिनेल के कथन के सत्य की खातरी हो गई। इटार्ड इन्द्रियों के शिक्षा के विषय में आँख में और कान की शिक्षा में कुछ कर सका। जंगली लड़के को गोल और चौरस पदार्थ पहिचान में आगये। वह दृष्टि से लाल और भूरे रंग का भेद देख सकता था। वह स्वाद से खटाई का भेद जान सकता था। वह कान के विषय में फल अथवा कोई खाद्य पदार्थ गिरने का आवाज जान सकता था तो भी वह पिस्तोल के छूटने का आवाज नहीं सुन सकता था। इटार्ड को जंगली के इन्द्रियों की शिक्षा के विषय में बहुत विजय मिली परन्तु उसकी योजी हुई विचारश्रेणी सेगुइन और मोन्टीसोरी को लाभप्रद हुई। इटार्ड के विचारों से यह प्रतीत होता है कि इन्द्रिय शिक्षा में इन्द्रियगम्य पदार्थों से होने वाले अनुभव में उनके साधर्म्य वैधर्म्य की शिक्षा में ही मुख्य शिक्षा है।

इटार्ड जंगली की जरूरतों को बढ़ाने में कामयाब नहीं हुआ। उसको खिलौने तो जरा भी आकर्षित नहीं कर सके। वह खाने के बाद एक ही खेल खेला करता था। यह खेल प्याले के नीचे ढ़के हुए फल को ढूंढ़ निकालने का था इसमें फल अर्थात् खाने के बजाय दूसरी कोई चीज रखने पर भी खेल होता था। खास करके तो उसमें दूसरे के प्रेम की जरूरत का विकास हुआ था। एक स्त्री जो उसको सम्हाल रखती थी उसके पास वह रहना चाहता था। उसका वियोग उसको दुःखदायक मालूम होता था और उससे मिलने पर वह सुख का अनुभव करता था। वह इटार्ड को भी चाहता था जो कि यह चाहना उसकी अप्रगट थी तो भी वह बहुत तीव्र थी।

उसको उच्चारण कराने का प्रयत्न करीब २ निष्फल गया सिर्फ वह 'लेइट' शब्द बोल सकता था। वह कुछ अस्पष्टता से इस शब्द के साथ अपनी खुराक वस्तु का विचार जोड़ता था। जब इटार्ड को इसके बोलने के बारे में असफलता मालूम हुई तब उसने छापे हुए और लिखे हुए शब्दों के साथ अर्थ को जोड़ने सिखाने का प्रयत्न किया। उसने एक पुट्ठे पर लाल गोलाकार वर्तुल, भूरा त्रिकोन के काले चौसर की आकृति चिपका दी और इसी कद, आकार और रंग की आकृतियों को कार्ड़ बोर्ड़ के पुट्ठे की बनाई। फिर कटी हुई आकृतियें पुट्ठे पर चिपकी हुई आकृतियों पर रखने का काम कराया गया। वह जंगली ऐसा करना सीखा। इस काम में नये २ फेरफार किये जाते तो कभी २ आकार और रंग के असल सम्बन्ध में फेरफार कर दिया जाता था। इस कार्य के बाद उस लड़के को २४ खानों वाली पेटी दी जाती थी और हर एक खाने में मूलाक्षर का एक २ अक्षर कार्ड़ बोर्ड़ के पुट्ठे के चौरस टुकड़े पर छपा हुआ था। इसके साथ ही इससे मिलती धातु के अक्षर रक्खे जाते थे। लड़के को पुट्ठे के अक्षरों पर धातु के अक्षर रखना आगया। प्रथम ही प्रथम उसने 'लेइट' जोड़ा। परन्तु उसमें बहुत से अर्थ रखता था जैसे कि दूध को देखते पीने की इच्छा दर्शाकर, दूध रखने का बर्तन देखते "लेइट" शब्द के साथ सम्बन्ध को दर्शाना आदि। इसके बाद इटार्ड ने 'लेइट' शब्द का खयाल अधिक स्पष्ट करने को दूसरे अधिक प्रयोग किये। उसने पेन, कुञ्जी और चाकू को एक मेज पर रखा और उस हर एक के नीचे उनके नाम के छपे हुये कार्ड रक्खे।

लड़के को पदार्थों के साथ शब्द को कैसे जोड़ना आदि सिखाये बाद पदार्थों का मिश्रण एक कौने में करके रक्खा और दूसरे कमरे में बैठ कर कार्ड दिये और उसके माफिक पदार्थ मंगाने का खेल शुरू किया। यह खेल शुरू ही शुरू में जंगली को कठिन मालूम हुआ परन्तु आखिरकार वह सीख गया। इसके बाद पदार्थों को दूसरे कमरे में रक्खे और मंगाये। इस तरह फतेहमन्दी से कार्य बहुत दिनों तक चला।

एक दिन इटार्ड ने प्रयोगों में जरा फेर-फार किया उसने खेलों में काम में आने वाले पदार्थों के माफिक दूसरे पदार्थ उनके बजाय रक्खे और कार्ड देकर कार्ड में लिखे अनुसार पदार्थ लाने को कहा। परन्तु जंगली के ध्यान में

कार्ड में लिखे पुराने पदार्थ ही थे। अर्थात् पदार्थ बदल गये तो भी उसमें का साम्य वह नहीं समझ सका। इटार्ड बहुत निराश हुआ और वह बोल उठा "कम नसीब लड़का मेरी मेहनत और तेरे प्रयत्न निष्फल गये। पुनः जंगल में चला जा और जंगली जीवन में आनन्द ले" परन्तु इटार्ड फिर उत्साहित हो गया और प्रयोग शुरू किये। आखिरकार वह जंगली कई एक शब्दों का अर्थ सीख चुका। इटार्ड के उक्त प्रयोग में मोन्टीसोरी पद्धति की इन्द्रिय शिक्षा में काम में आने वाली छः खाने की भौमितिक आकृति का मूल है। साम्य से सिखाने का सारा सिद्धान्त मोन्टीसोरी ने इटार्ड में से लिया है।

मोन्टीसोरी अपने प्रयोग में जो धीरज रखने का कहती है वह सिद्धान्त इटार्ड का ही है। प्रयोग करने वाला कभी थकता है एक दफा तो जंगली के साथ जंगली भी हो जाता है और इस विषय में इटार्ड मोन्टीसोरी का समर्थ गुरु है। मोन्टीसोरी पद्धति देखने का महत्व और बालकों के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध करने की जरूरत इटार्ड के प्रयोग से प्रदर्शित होती है। इटार्ड ने बहरों गुंगों के शिक्षा का जो अद्भूत कार्य किया है उसके सम्बंध में यहां पर विवेचन करने का स्थान नहीं है।

उक्त अवरन के जंगली की बात सुन्दर और रसिक है। इटार्ड ने उसको कई तरह से शिक्षित किया परन्तु उसको बहुत फल नहीं मिला। यद्यपि जंगली बहुत बातों में सामाजिक हो गया था और थोड़ा बहुत समझना सीख गया था तो भी वह मनुष्य की साधारण कोटी पर नहीं पहुंच सका था। ऐसी आशा प्रतित होती थी कि ज्यों २ यह बड़ा होता जायगा त्यों वह अधिक अच्छा होता जायगा परन्तु जब वह युवान होगया तब अधिक मस्तीखोर हो गया अतएव उसको प्रयोगशाला में से छुट्टी दी गई और वह उसको सम्हाल ने वाली बाई के साथ रहा जब तक कि वह जीवित रहा।

सेगुइन

अडवर्ड सेगुइन ने सं० १८१२ ई० में फ्रान्स के केलेन्सी गांव में जन्म लिया था उसने इटार्ड के पास सरजरी और वैद्य का काम सीखा था। यद्यपि

वह इटार्ड का शिष्य था और उसने इटार्ड के पास से ही मूढ़ो के उद्धार के लिये जीवन समपर्ण करने की प्रतिज्ञा ली थी तो भी उसने अपना जीवन आदर्श संत सायमन और उसके सम्प्रदायों में से निर्माण किया था।

उसने २५ वर्ष की उम्र में एक मूढ लड़के को शिक्षा देने का काम हाथ में लिया। अठारह महिने की शिक्षा के बाद यह लड़का अपनी इन्द्रियों का उपयोग करना सीखा। वह याद रख सकता था, मुकाबला कर सकता था बोल सकता था और पढ़ सकता था। सेगुइन ने इस विजय से मूढ़ लोगों की शिक्षा के लिये एक पाठशाला स्थापित की। पांच वर्ष के बाद पेरीस की "ऐकेडेमी ऑफ सायन्स" (विज्ञान परिषद्) ने उसके दश विद्यार्थियों की परीक्षा लेकर उनका नतीजा प्रगट किया "सचमुच ही मूढ़ों की शिक्षा का प्रश्न सेगुइन ने ही ढूंढ निकाला है" देश २ के शिक्षा-शास्त्री सेगुइन का काम देखने के लिये पेरीस आने लगे और सभ्य संसार में इसी के सदृश एक के बाद एक उत्तरोत्तर पाठशाला स्थापित होने लगी। कम नसीब से १८४८ में फ्रान्स के विप्लव की वजह से उसको अमेरीका जाना पड़ा और फ्रान्स में उसके काम का अन्त हो गया। अमेरीका में गये बाद वहां भी उसने यह काम जारी किया। वह बीस वर्ष के परिश्रम बाद मर गया।

सेगुइन की शिक्षा पद्धति के चार विभाग किये जा सकते हैं।

१—शिक्षा का सिद्धान्त।

२—क्रियातन्तुओं की शिक्षा।

३—इन्द्रियों की शिक्षा।

४—बुद्धि की तथा नीति की शिक्षा।

१—शिक्षा के सिद्धान्त-सेगुइन का पहिला सिद्धान्त व्यक्तित्व को मान देने का था। वह कहता है कि पहिली दृष्टि में सब बच्चे एक सदृश दिखते हैं। दूसरे दर्शन के समय उनमें अगणित भेद दिखते हैं। अधिक सूक्ष्मता से देखने ये भेद समझे जा सकते हैं और काबू में एक समूह में देखे जा सकते हैं। हमें शिक्षा में किसी रुख को अनुकूलता करने की है, किसी का विरोध करने का है,

अपूर्णता में पूर्णता लाने की है, वैयतिक खामियतों देखने की है, वैचित्र्य होशियारी करने की है और भिन्न २ रुखों की योग्य अनुकूलता करने की है।

सेगुइन का दूसरा सिद्धान्त यह है कि मनुष्य अपने जीवन की प्रत्येक पल में यह अनुभव करता है, समझता है और क्रिया करता है मनुष्य मनुष्यत्व प्राप्त कर सके इसके लिये उसको शरीर की, मन की और क्रिया शक्ति की उत्तम प्रकार से शिक्षा दी जानी चाहिये। ये तीनों क्रिया मनुष्य में एक ही साथ बनती हैं तो भी शिक्षा का क्रम अनुक्रम से प्रथम शारीरिक इसके बाद मानसिक और मानसिक के बाद क्रिया सम्बन्धी होना चाहिये। एक के शिक्षा के अभाव से दूसरे को नुकसान होता है। सिर्फ मानसिक शिक्षा शारीरिक तथा क्रियात्मक शक्ति का उलटा ह्रास करता है।

संख्याबन्ध विद्यार्थियों को वर्ग में इकट्ठे कर उनका व्यक्तिगत रुख जाने बिना उनको एक सिपाहियों की टुकड़ी के सदृश गिन कर सामुदायिक शिक्षा देने का सेगुइन विरोध करता है। उनकी शारीरिक मानसिक अथवा दूसरी शक्ति का व्यक्तिगत विचार किये बिना शाम हो जाने पर शिक्षा के पांच डोज जबरदस्ती किसी पर लादने की रीति की निन्दा करता है। मात्र स्मरण शक्ति पर अत्यन्त बोझ लादने वाली और शरीर और मन के धर्म का पक्षघात उपजाने वाली शिक्षा की वह निन्दा करता है। यहां पर यह देखा जा सकता है कि मोन्टीसोरी के विचारों के लिये सेगुइन ने कैसी भूमिका तैयार करली है। बच्चे की व्यक्ति को मान देने का सिद्धान्त मोन्टीसोरी पद्धति की नीव है और इसका पहिला पत्थर सेगुइन रखता है।

२—क्रियातन्तुओं की शिक्षा-इन्द्रियों की शिक्षा पर बुद्धि का और दूसरी शिक्षा की इमारत निर्माण करने कराने का मान सेगुइन को ही है। शरीर की, स्नायुओं की तथा इन्द्रियों की शिक्षा के विषय में मोन्टीसोरी ने सेगुइन के पास से बहुत कुछ लिया है। सेगुइन ने सब मूढ़ बालकों को शिक्षा देने के लिये जो पद्धति की योजना की थी उसी को डा० मोन्टीसोरी ने समधारण बालकों को स्वयं शिक्षा देने के काम में लिया है। सेगुइन के सिद्धान्त मोन्टीसोरी से मिलते हैं परन्तु वह उसका बड़ा पूर्वाचार्य है। मूढ़ बालकों को शिक्षा देने की योजना

पद्धति का रहस्य उसी के सिद्धान्तों से मालूम हो सकता है इतना ही नहीं परन्तु इसके ज्ञान से मोन्टीसोरी पद्धति के साधन बखूबी समझे जा सकते हैं।

सेगुइन मूढ़ और साधारण शक्तिवाले बच्चों में सिर्फ इतनी ही भिन्नता बताता है कि शिक्षा के अभाव से मूढ़ बच्चों की शक्ति अविकाशित रहती है। इससे जिनकी शक्ति समधारण है उनके शिक्षा के लिये सेगुइन के साधन स्वयं शिक्षण देने वाले हैं। सारणतः मूढ़ बुद्धि के बच्चों को अपने हाथ पैर का उपयोग करना नहीं आता है इतना ही नहीं वे समतोल खाना पीना भी नहीं जानते हैं कि उनके शरीर में शीघ्रता से काम करने की स्फूर्ति नहीं होती है अक्सर अविकास की वजह से तथा अक्सर अभ्यास की वजह से ऐसा होता रहता है। इसलिये सेगुइन ने कई तरह की कसरतें निकाली हैं और कसरत के साथ २ संगीत को स्थान दिया है। उनको शुरू ही शुरू में कसरत अप्रिय मालूम होती थी और उनकी आंखों से अश्रु गिरते थे। परन्तु पीछे से वह उनको अच्छी मालूम हुई। छोटे समधारण बच्चों के शरीर अच्छे होते हैं अतएव उनके शरीर में मूढ़ बच्चों के सदृश कमी नहीं होती है तो भी उनकी गति में और दूसरी सब क्रियाओं में सम्पूर्ण काबू नहीं होता है इसका कारण मात्र यही है कि उनके ज्ञानतन्तु बराबर शिक्षित नहीं होते हैं। इसलिये मोन्टीसोरी ने तरह २ की कसरतें सेगुइन की कसरतों में से ली हैं लकीरों में चलने का खेल सांकड़ा २"×४" के पाटीये पर चलने का खेल, गोलाई पर संगीत के साथ चलना, झूला आदि तरह २ की कसरतों का अनुकरण करना आदि का मूल सेगुइन में है। कहने का सारांश यह है कि उसने शारीरिक शिक्षा के प्रकरण का बहुत हिस्सा सेगुइन के सिद्धान्तों के अनुसार ही लिया है। मूढ़ बच्चों में उनके क्रियातन्तु जो मंद अथवा मृत प्राय होते हैं उनको चैतन्य अथवा जीवनमय करने के हैं। अतएव समधारण बच्चों को इन्हीं क्रियातंतुओं की मात्र समतोलता से काम करते सीखाना है।

२ इन्द्रिय शिक्षा—इस विषय में मोन्टीसोरी ने सेगुइन के पास से बहुत कुछ लिया है इसको ठीक २ स्पष्टता से समझने के लिये सेगुइन की इन्द्रिय शिक्षा की रीति को देखना जरूरी है इसके बाद मोन्टीसोरी के इन्द्रिय शिक्षा के प्रकरण को देखने से मालूम हो सकेगा कि मोन्टीसोरी ने सेगुइन की पद्धति का कितना लाभ उठाया है।

सामान्यतः मूढ़ बच्चों की स्पर्शेन्द्रिय बहुत ही जड़ मालूम होती है या तो उसके स्पर्श से वस्तु का कुछ भी खयाल नहीं आता है अथवा तो स्पर्श की इन्द्री इतनी अधिक तीव्र होती है कि किसी भी वस्तु को स्पर्श से जानना मूढ़ बालकों के लिये अत्यन्त कठिन कार्य है कारण कि बच्चा उसको स्पर्श नहीं कर सकता है इस तरह की कमी के बहुत से कारण हैं।

इन कारणों को दूर करने के लिये भिन्न २ तरह की कसरतों की योजना की गई है जिनकी स्पर्शेन्द्रिय अत्यन्त कोमल होती है उनको ईंटें उठाने का, पावड़ा गेंती से खोदने का, अथवा करवत से वेरने आदि का मोटा काम दिया जाता है और जिनकी स्पर्शेन्द्रिय अत्यन्त जड़ होती है उनको मुलायम और पोलिश किये हुये पदार्थों को स्पर्श करने को कहा जाता है। बराबर स्पर्श करने के लिये एक के बाद दूसरा ठंडे और गरम पानी में हाथ भिगोने की कसरत भी सेगुइन ने रक्खी है।

स्वाद और गंध की इन्द्री करीब स्पर्श की इन्द्रियों से मिलती आती हैं। सेगुइन उनकी खास शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करता है वह भी यह बात मानता है कि बिलकुल अलग रखना भी तो भूल भरा हुआ है। मूढ़ बालकों को मैला क्या और स्वच्छ क्या ? सुगन्ध क्या और दुर्गन्ध क्या ? इसकी खबर पड़नी ही चाहिये, इसलिये बच्चों को स्वस्था के वातावरण में रखने चाहिये और साफ हवा का परिचय कराना चाहिये। ऐसा करने से उनके अन्दर संस्कारिता आयगी और वे शहरों की दुर्गन्धी की खराबियों से बच जायेंगे।

कर्णेन्द्रिय के विषय में सेगुइन मानता है कि मूढ़ बालक सुनते नहीं हैं उसकी कोई खास की खराबी नहीं है परन्तु अन्दर ही कुछ न्यूनता है अतएव तरह २ के आवाजों से तथा संगीत तथा वाणी से इस कमी को दूर करने के लिये उसके प्रयोग थे। उसका अनुभव ऐसा था कि खाली बालक पिस्तोल की आवाज भी नहीं सुन सकता था उसकी यह मान्यता थी कि यदि बच्चे को प्यास लगी हो और एक प्याला में से पानी दूसरे में डाला जाय तो उसका आवाज वह सुन सकता था। जीवन के आवश्यक प्रसङ्ग खड़े करने से उसके सम्बन्धी आवाज मूढ़ बालक सुन सकते हैं। आवाजों से सङ्गीत की असर अच्छी होती थी।

मूढ़ बच्चे संगीत को नहीं समझते हैं तो भी उन पर पहिले कभी कोई हृदय को हिलाने वाली असर नहीं हुई है वह संगीत से अवश्य होती थी। उसका अनुभव ऐसा था कि संगीत से श्रम दूर होता है। सङ्गीत मन्द बुद्धि वाले बच्चे में चेतन्यता प्रगट करता है, विचार को जागृत और त्वरित करता है, और क्रोध थकावट तथा शोक को दूर कर कोमलता अर्पण करता है। संगीत नैतिक जीवन का पोषण है चाहे बालक शुरू ही शुरू में संगीत की ओर कान से ध्यान न दे और वह अरसिक लगे परन्तु धीरे २ उसमें संगीत प्रियता की कुछ अंश में जागृति होगी। जब वाद्य बजे तब बालक के हाथ अथवा छाती को वाद्य के साथ लगा देना चाहिये बजानेवाले को कभी ऊँचे स्वर से कभी नीचे स्वर और बीच में कुछ ठहर कर बजाना चाहिये इससे आवाज की समविषयता की वजह से बालक संगीत की कदर करना सीखेगा और कभी २ बच्चों को एकान्त और अन्धेरे में रखना जरूरी है आस पास का वातावरण शान्त किये बाद दूर २ के आवाज अथवा संगीत उसको सुनाना चाहिये। ऐसा करने से आगे पीछे मन्द कान में स्वर प्रवेश कर सकेगा। एक दफा कान सुनेगा तो धीरे २ वह सुनने लगेगा। ऐसा करने से बच्चा संगीत प्रिय हो जायगा इन सब बातों का डाक्टर मोन्टीसोरी ने सुन्दर प्रयोग किया है।

आँख की शिक्षा के बारे में सेगुइन के विचार मोन्टीसोरी पद्धति की दृष्टि में खास देखने लायक है। आँख की शिक्षा में प्रथम प्रश्न आँख की स्थिरता का है। मूढ़ बच्चों में आंख की चंचलता बहुत होती है। सेगुइन ने इसके लिये नीचे लिखी कसरतों की योजना की है:—

१—बच्चे जो चीजें ढूंढ़ सकते हैं उन्हें ढुंढ़ाओ।

२—बच्चों को अन्धेरे में रख कर वहां प्रकाश से भौमितिक अथवा दूसरी आकृतियों की रचना करो और उनको उनकी दृष्टि के आगे रखो।

३—केलीडोस्कोप के रंग और रंग की घटनाओं को बताओ।

४—बालक के हाथ और आंख स्थिर करने के लिये उसको आसन (चिप्पोड़ा) पर बिठलाओ।

५—त्राटक करना, शिक्षक को चाहिये वह बच्चे को अपने सामने बिठला दे। उस समय सर्वत्र शान्ति होनी चाहिये बच्चे के शरीर को अत्यन्त स्थिर रखने के बाद शिक्षक तीव्र और एकाग्रह दृष्टि से बच्चे की आंख देखे। बच्चा शिक्षक की दृष्टि में हटने लगेगा, भागेगा, चिल्लायेगा अथवा आंखें बन्द कर देगा शिक्षक को धैर्य पूर्वक बैठाना चाहिये बच्चा जब फिर आंख खोले तब प्रयोग पुनः जारी करना चाहिये। आखिर कई महीनों बाद आंख स्थिर होगी और बच्चा उसका उपयोग करना सीखेगा।

जब बच्चे की आंख स्थिर मालूम हो तब उसके पास तरह २ के रूप रंग के पदार्थ रखे जाय और उनके अन्तर व्यवस्थित तौर पर रक्खे जाय। रंग के ज्ञान के लिये नीचे का साहित्य काम में लाया जाता है:—

१—अन्धेरा कमरा जिसमें रंगीन काच की खिड़की हो।

२—रङ्गीन कार्ड, रङ्ग बिरङ्गी रीबन तथा संगमरमर की तख्ती इन साधनों को जोड़ कर जमाये जाते हैं कारण समधारणता से रङ्ग की शिक्षा शुरू होती है।

३—घर में काम में आने वाले भिन्न २ रंगीन पदार्थों का परिचय।

रूप की शिक्षा देने के लिये नीचे लिखे हुए साहित्यों का परिचय कराया जाता है:—

१—गोल, चौरस अथवा त्रिकोन जैसी आकृति।

२—तरह २ के घन (घनाकृति)।

साधन की एक जोड़ी शिक्षक के पास रहे और एक बच्चे के पास रहे। जब शिक्षक इन से काम करता जाय तब बालक उसी माफिक करना सीखे। शिक्षक तरह २ के आकार जोड़ता है, वह घर बांधता है, बंगला बनाता है आदि बच्चा उसी के अनुसार कार्य करता है। मूढ़ बालकों को ये खेल बहुत कठिन मालूम होते हैं परन्तु इन खेलों से उनकी आंख शिक्षित होती हैं और वे बुद्धि के प्रदेश में जाते हैं।

सेगुइन परिणाम की शिक्षा आंख से देता है इसलिये मोन्टीसोरी पद्धति जिसको लम्बी सीढ़ी के नाम से पहिचानते हैं उसीको साधन कहते हैं। लम्बी लकड़ी छोटी लकड़ी की पहिचान सीखाये बाद लकड़ियों को शामिल कर दी जाती है और फिर उनको बालक के पास क्रमवार रक्खी जाती है। बच्चा धीरे २ यह काम बहुत शीघ्रता से करता है कि हम लोग भी उतना न कर सकें। बालक को अन्तर का खयाल भी कराया जाता है। शिक्षक एक ही साइज की पुस्तकें भिन्न २ अन्तर पर रखता है और उसी प्रकार बालक को करने के लिये कहता है बालक इस तरह करते २ आखिरकार अन्तर का तत्व समझता है। इसके बाद वह आज्ञा को सुन कर भी अन्तर के ध्यान में रख कर उनकी व्यवस्था की रचना करता है। स्वयं मध्य बिन्दु समझ कर दूर और नजदीक के पदार्थों के बीच का अन्तर जानना बालक को सीखाया जाता है इस तरह परिणाम और अन्तर का खयाल आये बाद बच्चे को चित्र की शिक्षा दी जाती है। मूढ़ बच्चे को सपाटी का खयाल नहीं होता। इसलिये शिक्षक रेती की वेदी करता है और कराता है। पाटी अथवा ऐसी आकृतियों पर अंगुलिएं फिरवाता है उसके बाद शिक्षक स्वयम् एक पेन्सील लेकर मूढ़ (जड़) बच्चे को देता है स्वयम् स्लेट के चारों ओर लकीर निकाल कर बच्चे को ऐसा करने को कहता है बच्चा वैसा ही करता है। बच्चे के स्नायु काबू में नहीं होते हैं अतएव उसके लिये लकीर निकालना कठिन हो जाता है। यह कठिनता दूर करने के लिये बच्चे को मिट्टी अथवा गारा दिया जाता है। बच्चा उससे चौकूनी त्रिकोन आदि आकृतिएं बनाता है चूरी से मुलायम लकड़े में लकीर करने का काम भी सौंपा जाता है। सेगुइन की मान्यता समधारण बालक के लिये ये सब कीमती है। कारण कि उसके द्वारा बालक रूप की कल्पना कर सकता है। कदापि इन इन कामों से बौद्धिक लाभ कम होता है तो भी बच्चे का खयाल चित्र तथा लेखन के लिये दृढ़ और निश्चित होता है।

अनुकरण पद्धति से शिक्षा का काम शुरू किया जाता है शिक्षक काले तख्ते पर भिन्न २ दिशा में लकीरें निकालता है और बालक से भी उसी तरह लकीरें निकलवाता है। जब बच्चे को सीधी लकीरें निकालना आजाय तब गोल लकीरें निकलवाई जाती हैं। इस तरह लकीरों से चित्र की शिक्षा शुरू

होती है और साथ ही साथ लिखावट के लिये हाथ तैयार होता है। इस तरह लकीरें मोन्टीसोरी पद्धति में बच्चे स्वयं करते हैं।

सेगुइन और मोन्टीसोरी पद्धति में चित्र शिक्षा की पुरानी पद्धति का परिवर्त्तन है।

४—बुद्धि और नीति की शिक्षा—सेगुइन बुद्धि की शिक्षा पठन और गणित की शिक्षा से देता है। इन विषयों की स्मृति से कसरत होती है और बच्चे की समझ का प्रदेश बढ़ता है भाषा ज्ञान के बढ़ते ही बच्चा अधिक समाजिक और व्यवहार कुशल बनता है। सेगुइन में बुद्धि की यही शिक्षा है।

शिक्षक श्रद्धा से नीति की शिक्षा देता है। वह जानता है कि मूढ़ बच्चों में शक्ति है। अलावा इसके शिक्षक को यह भी समझना चाहिये कि निश्चयपूर्वक मूढ़ बच्चा विकास करेगा। शिक्षक को दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि मूढ़ों के लिये किये हुये काम में उनका अन्तरात्मा खिल जायगा। चेतनेवाली क्रियाएँ उनमें स्फुरायमान होगी और श्रम भरे हुए सर्जन उनमें खिलेंगे। और यही मूढ़ों की नीति शिक्षा गिनी गई है।

सामान्यतः वातावरण ही सच्ची नीति शिक्षा है यहां पर मोन्टीसोरी का विचार गर्भ में है।

सिद्धान्त विचार

मोन्टीसोरी के सिद्धान्त विचार में मुख्यतः स्वाधीनता, नियमन और स्वतंत्रता की चर्चा की गई है।

स्वाधीनता

यदि मनुष्य स्वाधीन है वही स्वतंत्र है जब तक बच्चा स्तन पान करता है तब तक खुराक सम्बन्धी पराधीन है। जब से खाने लगता है तब से वह अपनी माता से स्वाधीन हो जाता है तब से उसके समस्त पोषण के साधनों की विविधता बढ़ती है और उसके सामने पसन्दगी की विशालता खिलती है।

प्रथम जीवन का साधन मात्र माता का दूध स्तनपान था। अब जीवन के साधनों की कमी नहीं है। इन साधन विपुलता का लाभ माता से स्वतंत्र होने के बाद बच्चे ले सकते हैं।

बच्चे की यह एक तरह की स्वाधीनता हुई। यह स्वाधीनता महत्व पूर्ण गिनी जाती है और छोटी उम्र में बच्चा पूर्ण स्वाधीन होता है। बच्चे को जब तक अपने आप चलते, अपना मुंह स्वयं धोते, अपने कपड़े खुद पहिनते, और खुद को जिस २ वस्तु की जरूरत है वे २ वस्तुएं समझो जा सके ऐसी शुद्ध स्पष्ट वाणी में जब तक नहीं मांगी जा सके तब तक वह परवश पराधीन है। बच्चों को तीन वर्ष की उम्र में स्वाश्रयी और स्वतंत्र हो जाना चाहिए।

स्वाधीनता का सच्चा अर्थ—उसका रहस्य—इसका सच्चा ख्याल अभी हमें नहीं आया उसका कारण यह है कि हमारा सामाजिक जीवन-वातावरण अभी तक इतना अधिक गुलामी भरा हुआ है कि प्रत्येक फल में हम गुलामी का श्वासों श्वास लेते हैं। जिस युग में सेवक संस्था विद्यमान है उस युग में स्वाधीन जीवन की कल्पना होना बड़ा मुश्किल है फिर उसके बीजारोपण के विचार की बात ही कहां रही? गुलामी के दिनों में भी स्वतंत्रता का सच्चा धर्म तो विकृत और अन्धकार में ही था।

हमें यह याद रखना चाहिए कि यदि निःसन्देह देखा जाय तो हमारे नौकर ही हमारे आश्रित नहीं है परन्तु हम स्वयम् ही उनके आश्रित है। हमारी आज की नैतिक दशा अधम हो गई है यह स्वीकार किये बिना हम कभी भी हमारे सामाजिक बन्धारण की हमारी गम्भीर भूल कभी मंजूर नहीं करेंगे। हमारे ऊपर कोई आज्ञा नहीं करता है और हम दूसरे पर आज्ञा करते हैं इससे अक्सर हम मान बैठते हैं कि हम स्वाधीन हैं। परन्तु जो अमीर मनुष्य अपने काम में नौकर की मदद मांगता है वह स्वयं काम करने की अशक्ति की वजह से नौकर के आधीन रहता है। लकवा से ग्रसित एक मनुष्य रोग से उत्पन्न परवशता की वजह से अपने जूते नहीं उतार सकता है और एक राजकुमार यह समझता है कि मैं उच्चकुल का हूं अतएव यदि अपने ही जूते उतारूंगा तो समाज ऐसा करने को खराब कहेगा इस नीति से वह जूते हाथ से उतारने की हिम्मत नहीं

करता। दोनों बातों में तत्त्व की दृष्टि से देखा जाय तो उसमें कोई भिन्नता नहीं है। जो प्रजा सेवक संस्था को स्वीकार करती है और मानती है कि मनुष्य दूसरे मनुष्य की नौकरी करे उसी में उन्नति है तो समझना चाहिए कि उस प्रजा के लोहू में निस्संदेह गुलामी है हम सब इस गुलाम वृत्ति के दास हैं अतएव नौकरी की सभ्यता, नम्रता, उदारता, स्वार्थपन और ऐसे २ सुन्दर नाम देकर अपनी निर्बलता बताते हैं।

सच्ची बात तो यह है कि जिसकी सेवा की जाती है उसकी स्वाधीनता घटती है उसकी शक्ति मर्यादित होती है। मेरी सेवा की जरूरत नहीं है कारण कि मैं निर्वीर्य नहीं हूँ और यही विचार भविष्य के मनुष्य की विद्यमानता का आधार स्तम्भ होगा। मनुष्य को आत्मा का स्वराज्य मिलने के पहिले उसने इस विचार को सिद्ध किया होगा। सिर्फ स्वाधीन मनुष्य ही स्वराज्य भोग सकता है स्वाधीन मनुष्य के लिये ही स्वराज्य है, जो दूसरों को पराधीन रखकर खुद भी पराधीन रहता है वह कभी भी स्वराज्य का मुंह नहीं देख सकेगा। स्वाधीनता के मार्ग में आगे जाने में जो शिक्षा बच्चों को मदद करती है, वही शिक्षा प्राणवान है।

बच्चों को अपने आप चलते, दौड़ते, सीढ़ी से ऊंचे चढ़ते और नीचे उतरते, अपने आप नहाते, साफ़ बोलते और आवश्यकताओं को जाहिर करते सिखाने में मदद करना चाहिये कि जिससे वे अपने व्यक्तिगत उद्देश पार पाड़ने की और अपनी इच्छाओं को तृप्त करने की शक्ति प्राप्त करलें। यह सब स्वाधीनता की शिक्षा है।

हम स्वभाव से ही बच्चों की नौकरी करते हैं। प्रेम से या किसी कारण से बच्चों के बजाय उनका काम करते हैं। हमारा यह अकृत्य उनके प्रति हमारी गुलामी भरा हुआ है इतना ही नहीं परन्तु वह भयङ्कर है कारण यह है कि हमारी गुलामी से बच्चों की उपयोगिता और स्वयं स्फूरित प्रवृत्ति मन ही मन में रहकर उसकी मृत्यु हो जाती है। हम ऐसा मानते हैं कि बच्चे तो सिर्फ पुतले हैं उनको हम गुडिया के माफिक खिलाते पिलाते हैं, हाथ मुँह धोते हैं। हम यह विचार नहीं करते कि बच्चे कुछ नहीं करते इसका कारण मात्र यह है

कि उनको वैसा कार्य करना अभी नहीं आया है। बच्चों को अपना काम स्वयं कर लेना चाहिये। कुदरत ने अपनी प्रवृत्ति करने के लिए शारीरिक साधन उपस्थित किये हैं और कैसे करना उनको सीखने के लिए बुद्धि दी है। कुदरती तौरपर ही बच्चों को जो २ काम करने हैं, अपने आप ही कर लेने चाहिये। उन्हें करने के लिये बच्चों की शक्ति बढ़ाना चाहिये। हमारा फर्ज सिर्फ इतना ही है कि उसमें मदद करें। जो माता अपने बच्चे को चम्मच पकड़ने का सिखाने के बजाय स्वयं चम्मच पकड़ कर बच्च को खिलाती है और जो माता कुछ नहीं तो खाकर बतादें कि कैसे खाना चाहिये। आदि बातों की बच्चों को समझ नहीं दी जाती परन्तु उससे विपरीत लुकमे दिये जाते हैं, वह माता सच्ची माता नहीं है। ऐसी माँ अपने बच्चे की स्वाभाविक स्वतंत्रता और मनुष्य की महत्ता का अपमान करती है, ऐसी माँ कुदरती अपने गोद में आए हुए एक मनुष्य का पुतला गिनकर कुदरत की अवगणना करती है।

अलबत्ता हम जानते हैं कि बच्चे को खिलाने पिलाने के बनिस्बत उसको हाथ मुंह धोने और कपड़े पहिनना सिखाने का काम बहुत ही कठिन है। तथा उस काम में अत्यन्त धीरज और शान्ति की जरूरत है। परन्तु पहिला काम सरल होने पर भी हलका है कारण कि वह काम नौकर का है जब कि दूसरा काम कठिन होने पर भी ऊंचा है कारण कि वह काम शिक्षा देनेवाले का है। निस्सन्देह पहिला काम मा को सरल मालूम होता है परन्तु बच्चे के लिए तो वह काम भयंकर ही है कारण कि बालविकास में यह काम विघ्नरूप है, उपाधि रूप है, विकासरोधक है। माता पिता की इस तरह की वृति का परिणाम अक्षर अक्षर भयंकर है।

जिस बच्चे के हाथ नीचे बहुत नौकर हैं वह धीरे २ अपने नौकरों पर अधिक आधार रखता है और इतने हद तक आधार रखता चला जाता है कि वह एक तरह से नौकरों का गुलाम ही हो जाता है उसको कुछ काम नहीं करना पड़ता अतएव उसके स्नायु निर्बल हो जाते हैं और आखिरकार वह क्रिया करने की स्वाभाविक शक्ति खो बैठता है। जो मनुष्य अपनी आवश्यक्ता के लिये भी काम नहीं करता है परन्तु दूसरे के श्रम पर ही जीता है उस मनुष्य का मन मंद और जड़ बनता है ऐसे मनुष्य को पीछे से किसी वक्त अपनी अधम

स्थिति का भान होता है और वह उस में से मुक्त होने की इच्छा करता है तो भी उस वक्त उसको मालूम होता है कि अपनी पूर्व स्थिति वापिस प्राप्त करने का कुछ भी बल अब उसमें नहीं है।

जरूरी मदद बिना स्वाभाविक विकास रूक जाता है पूर्व देश की स्त्रियों को सिर्फ एक ही भूषण रूप घर में बैठना और जनाने में रहना सिखाया जाता है उस पर से साफ जाहिर है कि पुरुष सब काम अकेला ही करना चाहता है वह अपना काम करता है तथा स्त्री का काम भी करता है। इसका परिणाम अनिष्ट होता हैं। स्त्री का कुदरती बल और प्रवृत्ति करने की शक्ति गुलामी की बेड़ी में जकड़ दी जाती है और वह सड़ जाती हैं। स्त्री का भरण पोषण किया जाता है उसकी तावेदारी उठाई जाती है इतना ही नहीं परन्तु उसको मनुष्यत्व का जो व्यक्तित्व मिला है उसका उपहास कर उसको क्षीण किया जाता है। मनुष्य के सब हक छीन लिए जाते हैं। समाज में उसके व्यक्तित्व के नाम पर केवल बिन्दी है। जीवन को बचाने के लिये अथवा उसकी रक्षा के लिये जिन जिन शक्तियों की जरूरत है उन सब शक्तिओं को स्त्रियों का गुलाम बना दिया गया है और उनका ह्रास किया गया है। यहां पर एक दृष्टान्त काफी होगा।

माता पिता और एक बच्चा गाड़ी में बैठ कर एक गांव से दूसरे गांव जा रहे हैं बीच में डाकू गाड़ी को खड़ी रखवाते हैं और पिस्तोल सामने रखकर कहते हैं "पैसा अथवा मौत" इस स्थिति में गाड़ी में बैठी व्यक्तिएं भिन्न २ तौर पर कार्य करती हैं। पुरुष जिसने शस्त्र काम में लाने की शिक्षा प्राप्त की है और वह इसके लिए निर्भय है वह पिस्तोल खिंच कर डाकूओं का सामना करता है। सिर्फ बच्चे को ही हिरने फिरने की छूट है अतएव वह शीघ्रता से दूर भाग जाता है और शौर करता है परन्तु स्त्री जिसके पास कुदरती व कृत्रिम शक्ति नहीं है क्योंकि उसके अवयवों की शिक्षा जनाने में मिली है और उसने बन्दूक का तो स्पर्श ही नहीं किया है अतएव वह एकाएक भयभीत होकर रोती है और वह वहां बेभान होकर नीचे गिरती है। इस बेहोश स्त्री के घर में बहुत नौकर हैं जो उसको काम नहीं करने देते इसी वजह से स्त्री की शक्ति क्षीण हो गई है।

पराधीनता में से ही जो हुक्मी का जन्म होता है। जो दूसरे से सेवा करवाकर खुश होता है उसमें जो हुक्मी आती है। शेठ नौकर से खिदमत लेकर

उस पर जो हुक्मी चलाता है उसका कारण यही है कि उसकी अधिक सेवा होने से वह निर्बल होगया है और स्वाधीनता खो बैठा है।

यहां पर कुशल निपुण कारीगर की मिसाल देते हैं। एक कारीगर सुन्दर काम हाथ से करता है इतना ही नहीं परन्तु वह सारी वर्कशोप को अपनी सलाह से प्रसंगोपात काम बताता है। वह जहां काम करता है वहां पर उसमें मनुष्यों को काबू में लाने और उनको सीखाने की सुन्दर शक्ति है यह सशक्त मनुष्य है जब आस पास के मनुष्य गुस्सा करते हैं या लड़ाई करते हैं तब चुपचाप रहता है कारण कि उसको अपने अन्दर कितनी शक्ति है उसका भान है परन्तु जब यही कारीगर घर आता है तब शक्ति कम होने की वजह से अथवा देर होने के कारण अपनी स्त्री को डराता है और उसके साथ लड़ पड़ता है इसका सच्चा कारण यह है कि घर के काम में वह कुशल कारीगर नहीं है। वह वर्कशॉप में स्वाधीन था। वह घर के काम में कुशल ,नहीं है अतएव पराधीन है। घर में कुशल कारीगर उसकी स्त्री है जो उसकी सेवा करती है और संभाल रखती है। यहाँ पर वह बलवान है वहां पर वह स्वाधीन है, परन्तु जहां उसकी सेवा चाकरी होती है वहां पर वह पराधीन है यदि वह घर का काम करना सीख जाय तो स्वाधीन हो सकता है। उसमें सम्पूर्ण मनुष्यत्व आ सकता है और वह ऐसे झगड़े करना भूल जाता है। जो मनुष्य अपने आराम और विकास के लिये जरूरी काम कर सकता है वह मनुष्य सम्पूर्ण विजयी है, स्वाधीन है, स्वतंत्र है, जिसको दूसरे का आधार लेना पड़ता है वह निस्सदेह गुलाम है।

हमें भावि युग के लिए बलवान मनुष्यों की जरूरत है। बलवान मनुष्य अर्थात् स्वाधीन मनुष्य से ही सम्बन्ध है।

नियमन

यदि कोई नियमित मोन्टीसोरी पाठशाला में जाकर देखे तो छोटे बच्चों के स्वयं नियमन से ताज्जुब हो जायगा। तीन से चार वर्ष की उमर से ४० बच्चे एक साथ काम करते मालूम होंगे। हरएक बच्चा अपने काम में मशगूल होगा। कोई इन्द्री की शिक्षा का साधन काम में लाता होगा, कोई गिनती की घोड़ी पर काम करता होगा, कोई अक्षर फिराता होगा, कोई बटन के

फ्रेम पर अपनी छोटी अँगुलियें फिराता होगा, कोई सफाई करता होगा। कोई बच्चा टेबल के पास कुर्सी पर बैठा होगा तो कोई आसन पर बैठा होगा। धीरे २ ले जाते और वापिस लाते साधनों का दबाहुआ आवाज आता होगा। बीच २ में फर्श पर चलते बच्चों की धीरे २ आतुरता भरी और हर्षित आवाज सुनाई पड़ती होगी। "शिक्षक, शिक्षक ! देखो तो जरा मैने यह किया।" सामान्य तौर पर बच्चों की तरह २ की प्रवृतियों में सिर्फ तल्लीनता ही देखने में आयेगी।

शिक्षक इधर उधर शान्ति से फिरता है जो बच्चा उसको पूछता है वह उसके पास जाता है वह इस तरह से सम्हाल रखता है। जिसकी उससे जरूरत पड़ती है उसके पास वह खड़ा ही रहता है। यदि जरूरत न हो तो उससे यह मालूम नहीं होता कि शिक्षक यहां पर खड़ा है। अक्सर जरा भी शब्दोच्चार किये कई घन्टे व्यतित हो जाते हैं। एकदफा एक प्रेक्षक ने ऐसा भी कहा था कि इन छोटे मनुष्यों को देखना ठीक ऐसा ही है जैसा कि न्याय करनेवाले न्यायाधीश मालूम होते हैं। जब प्रवृति में इस तरह की तल्लीनता आ जाती है पदार्थों के लेने के विषय में कभी झगड़े टन्टे नहीं होते हैं। जब कोई बच्चा सुन्दर सर्जन करता है तो दूसरे बच्चे आश्चर्य और आनन्द से उसमें भाग लेते हैं। किसी को दूसरे उत्कर्ष की इच्छा नहीं होती परन्तु एक की विजय में सब उत्सव मानते हैं। अक्सर दूसरों का अच्छा देख कर अपनी अच्छा करने लग जाते हैं उनसे जो कुछ होता है उसमें वे सुख और सन्तोष मानते हैं और वे दूसरों के कृत्यों के प्रति द्वेष नहीं करते हैं। तीन वर्ष का छोटा बच्चा सात वर्ष के बालक के पास शान्ति से काम करता है। ज्यों उसको अपनी ऊंचाई से संतोष है तथा दूसरों की ऊंचाई से असन्तुष्ट होकर ईर्षा नहीं करता है। गम्भीर शान्ति में चारों तरफ वर्धनविकाश का काम होता है।

कभी सारा समूह शिक्षक के पास कोई काम कराना चाहता है। जैसे कि इच्छित काम को छोड़कर शिक्षित के पास आना आदि। शिक्षक सिर्फ धीरे आवाज से अथवा निशानी से बच्चों को जरा सम्बोधन करता है तब वहां पर सर्वत्र शांति फैल जाती है। सब उसकी आज्ञा आतुरता से झेलने को तय्यार रहते हैं और आज्ञा का कार्य करने को तत्पर रहते हैं। शिक्षक तरह तरह की आज्ञावाले तख्ते पर लिखता है और बच्चे प्रेमपूर्वक उनको बताते हैं। शिक्षक

की आज्ञा तो बच्चा मानता ही है परन्तु कोई मनुष्य बच्चों को किसी तरह का काम सौंपता है तो वे उसको भी जरा बारीकी से, होशियारी से, हालत सुनकर आश्चर्यजनक कार्य करते हैं। बच्चों को कभी २ प्रेक्षक चित्र निकालते हुए संगीत गवाते हैं। बच्चा अतिथि सत्कार के लिए एक गायन गाता है और पुनः वह काम पर लग जाता है उसके काम में कोई कमी नहीं है। मुख्यतः छोटे बच्चे आज्ञा होने के पहिले ही काम कर लेते हैं।

यदि बच्चा निर्भय न हो तथा स्वतंत्र और सुखी न हो तो वह अपना कार्य दूसरे को अन्तःकरणपूर्वक नहीं बता सकता। यदि वे प्रेमपूर्वक प्रेक्षकों को सब कुछ नहीं समझाते होते तो अवश्य किसी को यह बात मालूम नहीं होती। अतएव इस पर से जो सुन्दर नियमन दिखता है वह दबाव का परिणाम नहीं है कारण कि यहां पर तो यह साफ २ दिखता है कि छोटे २ बच्चे स्वयं मालिक है। यदि बच्चे जिस प्रेमोत्साह से अपने हाथ शिक्षक के पैर पर बिटौल कर शिक्षक को नीचे से नमन करने को बाध्य किये जाते हैं और चुम्बन करते हैं। इससे साफ जाहिर है कि छोटे बच्चों का हृदय यथेच्छ विकाश के लिए कितना स्वतंत्र है।

जिन्होंने उनको भोजन की तय्यारी करते देखे होंगे उनको बहुत अचम्भा हुआ होगा कि छोटे चार वर्ष के बालक छुरी, कांटे और चमच लेते हैं। पानी भरेहुए कांच के प्याले रकाबी में रखकर रकाबी को ले जाते हैं और गरम ओसामन के बरतन में से एक भी बून्द गिराये बिना एक टेबल से दूसरे टेबल पर ले जाते हैं और ऐसा करने में एक भी गलती नहीं होती है, एक भी प्याला नहीं टूटता है ओसामन का एक भी कतरा नीचे नहीं गिरता है। छोटे पिरसने वाले बच्चे भोजन के समय होशियारी से कार्य करते हैं। ओसामन खतम हो जाता है तब दूसरा उसी वक्त हाजिर करते हैं।

चार वर्ष का बच्चा जो साधारण झगड़े करता है जो हाथ में लेता है उनको तोड़ फोड़ देता है उसको यहां पर सब कुछ करना पड़ता है। उसको इस तरह से काम करता देख हर कोई मनुष्य हृदय से प्रफुल्लित हो जाता है उनका परिणाम मनुष्य की आत्मा की गहराई में रही हुई गुप्त शक्ति के विकास में से आता है। अक्सर प्रेक्षक बच्चों को मजलिस में रोते देखते हैं।

परन्तु ऐसा नियमन मुँह की आज्ञा से अथवा उपदेश स अर्थात् आज की प्रचलित नियमन की युक्तियों से नहीं आ सकता है ऐसा सच्चा नियमन शिक्षक पर आधार नहीं रखता है परन्तु हरएक बच्चे के अन्तर जीवन में होने वाले विकास पर अवलम्बित है।

नियमन उपालम्ब से अथवा बड़ों के उपदेश से नहीं लाया जा सकता है। भूल निकालकर, भूल के लिये उपालम्ब देकर अथवा भूल की वजह से लड़कर नियमन नहीं लाया जा सकता है कदापि शुरूआत में ऐसे साधनों से ऊपर की सफाई का दिखाव होगा परन्तु वह लम्बे समय तक नहीं रहेगा।

सच्चे नियमन का प्रथम प्रभात की प्रवृति में बच्चे को अपूर्व रंग लग जाता है उसके चहरे पर वक्त का भाव, अत्यन्त एकाग्रहता और काम में खंत इस बात की साक्षी देता है कि बालकने नियमन के मार्ग पर प्रथम पैर रखा है फिर प्रवृत्ति कैसी ही क्यों न हो वह इन्द्रिय शिक्षा के साधन का खेल हो अथवा बटन या हूक भराने का हो अथवा प्याले और रकाबी उठाने का हो। परन्तु यह प्रवृत्ति जो हुक्मी से बच्चों पर नहीं लादी जा सकती है यह प्रवृति स्वयं-स्फुरित होनी चाहिये अर्थात् इसका जन्म बच्चे के विकास की आवश्यक्ता में होना चाहिये और वह जन्म लेती ही है कारण कि विकास के लिये मनुष्य स्वभावतः प्रवृति करता है और जीवन की अंत शक्तियें जो प्रवृत्ति तरफ स्वाभाविक तौर पर जोर रुकावट बिना झुकती हैं अर्थात् जिन २ प्रवृतिओं में मनुष्य धीरे २ ऊंचा चढ़ता है वही प्रवृति नियमन देने वाली है। इस तरह की प्रवृति मनुष्य में सुव्यवस्था लाती है उसके समक्ष विकाश की अनन्त शक्तियों का प्रदेश खोलती है ऐसी प्रवृति का जब तक बच्चा पोषक और विकाशक है तब तक वह राजी खुशी से बारंबार करता है। छोटे बच्चों का अपने शरीर पर काबू नहीं होता है कारण कि उनमें स्नायुओं का नियमन नहीं हैं इससे शुरू ही शुरू में बच्चा सारा वक्त व्यवस्था बिदून हिलचाल करता है जमीन पर पड़कर पग पछाड़ता है तरह तरह का नखरा करता है और रोता है। हिलचाल की समतोलपना का अभाव इसका कारण है उनमें नियमन की सुप्रवृति है परन्तु वह उसके लिये स्पष्ट नहीं है उसको प्राप्त करने के लिए वह प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में वह बहुत गलतियें करता है और मेहनत करता है। हमें उनको इस में अनुकूलता कर देने

की है परन्तु इसके बजाय मेरे सदृश स्थिर खड़ा रह ऐसा कहने से बच्चे की अशक्ति के अंधकार में प्रकाश नहीं पड़ता है। विकाश के मार्ग को जाते हुए मनुष्य को सिर्फ आज्ञा करने से सहायता नहीं होती है। बड़ी ऊम्र का मनुष्य जो अपने खराब आवेश का स्वरूप जानता है और अपनी क्रिया शक्ति के बल पर उसको झुकाने को समझता है। वह ऐसा करने को शक्तिमान् है परन्तु बच्चे का मुकाबला उसके साथ नहीं किया जा सकता।

बच्चे के विषय में तो इतना ही है कि जब उसके स्वाभाविक विकाश का समय हो जाय तब ऐच्छिक कार्य में उसको मदद करने की है। प्रवृति करने की छूट यह एक सहायता है दूसरी सहायता बालक की हिलचाल कैसे व्यवस्थित हो सके उन हिलचालों का प्रथक्करण करके उसके आगे रखने की है। बच्चा धीरे २ उस पर विजय प्राप्त करेगा।

इसके लिये भिन्न कक्षाओं की स्थिरता बालक को बताना जरूरी है। कुर्सी पर बैठना, खड़ा होना, चलना, फर्श पर चलना, जमीन पर निकाली हुई लकीरों पर चलना, सीधे खड़े रहना आदि हिलचाल कैसे होती है उनको बताना आदि। पदार्थ इधर से उधर कैसे ले जाया जाता है सम्हाल कर कैसे रखा जाता है कपड़े कैसे पहिने जाते हैं और उतारे जाते हैं आदि सब में कैसी हिलचाल होती है वह भी दिखाने का है इसके परिणाम से शरीर की सम्पूर्ण स्थिरता आ जाती है। शान्त बैठो, स्थिर बैठो आदि कहने की जरूरत नहीं रहेगी। इस तरह की कसरतों से बालक में अपनी उम्र के योग्य स्वाभाविक शारीरिक नियमन आ जायेगा। जब प्रवृति सरल होती है तब अव्यवस्था का नाश होकर व्यवस्था आती है। इस तरह से संयमित बच्चा मात्र अक्रियता से नहीं फिरता है परन्तु, पहिले से वह अब व्यवस्थित हो गया है उसने विकास का एक पैर आगे बढ़ाया है, उसने अपनी स्वाधीनता बढ़ाई है उसकी शान्ति अर्थात् निष्क्रियता नहीं है, उसकी शान्ति भी प्रवृति ही है।

ध्यान के खेल में इस चमत्कारिक नियमन की साधना में बहुत सहायता मिलती है। सम्पूर्ण स्थिरता, दूर होठ फैलाकर बोलते आवाज को पकड़ने के लिये ध्यान की एकाग्रहता, कुर्सी अथवा टेबल के साथ फिरे बिना सुनकर चलना

उठना, बैठना आदि और जमीन पर पैर की अंगुलियों पर चलना आदि के सब बच्चे को व्यवस्थित करने के काम में असरकारक तैयारी रूप हैं।

बेशक बाहिर की प्रवृत्ति अन्तर विकास को प्रेरने का साधन मात्र है बाहिर की प्रवृत्ति अन्तर विकास को भी प्रगट करती है। प्रवृत्ति से बच्चा दिन व दिन मानसिक प्रदेश में आगे बढ़ता और विकसित होता जाता है इस बढ़ते हुए मानसिक विकास से उसका बाहिर का काम सुधरता जाता है और साथ ही साथ उसका आनन्द भी बढ़ता जाता है।

नियमन यह हकीकत नहीं है, वस्तु नहीं है एक मार्ग है इस मार्ग पर चलने से बच्चे को सच्चाई का यथार्थ ख्याल आता है। यह मार्ग निश्चित हेतु सिद्ध करने के लिए अन्तर में से उद्भवित प्रवृति से चलने का है। निश्चित हेतु सिद्ध करने के लिए की हुई प्रवृतिओं से जो आन्तरिक सुव्यवस्था का जन्म होता है उसका बालक को भव्य आनन्द मिलता है। भिन्न २ क्रियाएं करते समय वह अन्तर में जागृति और आनन्द का अनुभव करता है इस पर से वह अपने शक्ति भण्डार को घढ़ता है उसमें वह माधुर्य और बल का संग्रह करता है। माधुर्य और बल धार्मिकता के मूल हैं। जब बच्चे में सुव्यवस्थित प्रवृति करने के परिणाम स्वरूप अध्यात्मिक ज्योत प्रगट होती है तब उसके चहरे के और गम्भीर प्रकाशित आँख के भाव रसिक और कोमल हो जाते हैं।

अपनी मर्जी माफिक अव्यवस्थित क्रिया करने वाला बच्चा अपने अव्यवस्थित कार्यों के सबब से थक जाता है। कुदरती तौर पर श्रम का आराम व्यवस्थित काम में है। स्वच्छ हवा में स्वाभाविक गति से स्वच्छ श्वास लेने में फेफड़ों को आराम पहुंचता है। स्नायुओं से काम लिया जाय तो उलटो उनकी स्वाभाविक प्रवृतिओं में रुकावट हो जाती है और उनको श्रम करना पड़ता है और इससे वह पतित दशा को पहुंचता है। यदि फेफड़ों में विकाश करने की प्रवृति बन्द करें तो वे शीघ्र मर जाते हैं और उनके साथ ही मनुष्य का जीवन पूरा हो जाता है इसी माफिक बच्चों की प्रवृतिएं भी हैं। मन के अनुकूल निश्चित स्वरूप के काम में आराम है। कुदरत के गूढ़ और छुपे आदेश के अनुसार वर्तन रखने में ही सच्चा आराम है। मनुष्य बुद्धिवाला प्राणी है इससे अधिक वह

ज्यों २ बुद्धि का कार्य करता जाता है त्यों २ उसको उसमें से विश्रान्ति मिलती है। जब बच्चा अव्यवस्थित और असंबद्ध कार्य करता है तब उसके स्नायु बल को बहुत श्रम करना पड़ता है उलटा बुद्धियुक्त कार्य से उसकी शक्ति निश्चय पूर्वक बढ़ती है और अनेक गुणी हो जाती है। आत्मविजय का उसको सात्विक अभिमान आता है पहिले उनको जो प्रदेश पार नहीं हो सकता है परन्तु ऐसा प्रतीत होता था अब वे उसके बाहिर जा सकते हैं। तब वे अपने शिक्षक के लिये कि जिसने उन पर अपने व्यक्तित्व का दबाव दिये बिना उनको जो सिखाया है, उसके लिये मान उत्पन्न होता है।

बच्चे की अन्तर वृति क्या है? और वह किस दिशा में जाती है उसको हमें देखना है हम नियमन के लिये उसके ऊपर प्रवृति लाद दें उसके बजाय मन पसन्द प्रवृति करते २ बच्चे नियमन प्राप्त कर सकते हैं और यही सच्चा सिद्धान्त है। इसलिये हम बच्चों की प्रवृति के बीच में आते हुए विचार करते हैं और उनकी प्रवृति को मान देते हैं। यहां पर एक बनाव पर विचार करते हैं।

रोम के बाग में एक साढा चार वर्ष का हँसमुखा रूपवान बालक था। वह बालक अपनी गाड़ी में छोटे २ कंकड़ भरने में मशगूल था उसके पास उसकी आया बैठी थी उसका यह ख्याल था कि मैं बालक को बहुत सम्हालती हूं। जब घर जाने का समय आया, आया बालक को धीरे २ कह रही थी "चलो जाने का वक्त हो गया" इसको छोड़ दो और बाबा गाड़ी में बैठो बच्चा अपने काम में इतना अधिक मशगूल था कि उसने उसका यह कहना नहीं सुना और सुनने पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। उसका कार्य जारी ही था जब आया को यह मालूम हुआ कि बच्चा उसका कहना नहीं मानता है और दृढ़ता से अपना काम करता ही जाता है तब वह शीघ्रमेव खड़ी हो गई और उस छोटी गाड़ी को कंकरों से भर दी। बच्चा और कंकर दोनों बाबा गाड़ी में रख दिये। उसके मन में ऐसा था कि जिस चीज की बच्चे को जरूरत थी वह चीज उसने उसको दे दी है।

परन्तु बच्चा तो जोर जोर से रोने लगा उसके छोटे चहरे पर अन्याय और जुल्म के चिह्न स्पष्ट दिखने लगे। इस बच्चे को कंकड़ से भरी हुई गाड़ी की जरूरत न थी उसको कंकड़ों से काम नहीं था उसको तो कंकड़ गाड़ी में

भरते समय शरीर की जो कसरत होती थी उसको करने की जरूरत थी। वह शारीरिक विकाश के लिये क्रिया करता था। बच्चे का उद्देश्य शरीर और मन के अन्तर विकास का था उसका उद्देश्य गाड़ी भर कंकर संग्रह करने का नहीं था। उस वक्त उसके इधर उधर बाहिर जगत के आकर्षण निरर्थक थे, अवास्तविक थे। उसको अकेली अपने जीवन की आवश्यक्ता ही मन पसन्द थी। कदापि उसने सारी गाड़ी भर भी दी होती तो उससे भी उसको सन्तोष नहीं होता परन्तु वापिस गाड़ी खाली कर पुनः वह का वही काम करने दिया होता तो जब उसको आत्मतृप्ती हो जाती तब वह रुक जाता।

बच्चे को काम करते करते आत्मतृप्ति होती थी इसलिए उसका चेहरा गुलाबी और हंसमुख दिखता था। सूर्य प्रकाश, व्यायाम और आध्यात्मिक आनन्द ये तीन प्रकाश किरण जीवन को घड़ते थे।

इन छोटे बनावों से बालजीवन में कैसे विघ्न आते हैं उसकी यह एक छोटी मिसाल है। बच्चों को बड़े नहीं समझते हैं वे उनको अपने नाप से ही नापते हैं और तोलते हैं। बच्चा कुछ करने को जाता है, करने की कोशिश करता है तो बड़े प्रेम पूर्वक उसको मदद करने दौड़ते हैं वे यह ख्याल करते हैं कि बच्चा सिर्फ स्थूल वस्तु ही मांगता है और वे उसको देने की फर्ज समझते हैं। परन्तु अक्सर बच्चा तो अपनी इच्छानुसार स्वयं विकास मांगता है कोई उसको करके दें तो उसकी इच्छा लेने की नहीं होती है वह जो कुछ काम करना सीख गया है वह का वह बार २ करते वह थक जाता है परन्तु जो उससे नहीं हो सकता है उसको बार २ करने का प्रयत्न करता है। दूसरे उसको अच्छी तरह से कपड़े पहिनाते हैं उसको वह पसन्द नहीं करता है परन्तु वह स्वयं जैसे पहिन सकता है उसी को वह पसन्द करता है बड़े उसको नहलावें धुआवें उसकी बनस्बित वह खुद नाहना और धोना पसन्द करता है चाहे पूर्ण तौर से उनके माफिक नहा और धो न सकें परन्तु वह बड़ा घर का मालिक होने के बजाय एक छोटा घर स्वयं निर्माण करना चाहता है इसका सच्चा और एक का एक ही आनन्द स्वयं विकाश है। जब बच्चा एक वर्ष का होता है तब तक वह सिर्फ अपना शारीरिक पोषण प्राप्त करने को अपना विकाश ढूंढता है परन्तु इसके बाद वह शरीर और मन दोनों का विकाश ढूंढता है।

बाग में खेलनेवाला बच्चा अपनी इन्द्रियों के स्नायुओं को शिक्षा देता था वह पत्थरों के बीच के अन्तर का अनुमान करने में अपनी आँख और पत्थर भरने की क्रिया में आवश्यकीय अपनी बुद्धि को शिक्षा देता था। इतना ही नहीं परन्तु वह एक किसी निश्चित काम को करने की शक्ति को शिक्षा देता था। परन्तु आया जो उसको खूब चाहती थी और वह ऐसा मानती थी कि बच्चे को बहुत पत्थरों की जरूरत है और इस मान्यता से वह बच्चे के जीवन को दुःखी करती थी।

नियमन में दूसरी अगत्य बात बच्चा अपने मन पसन्द प्रवृति का बारम्बार कितना पुनरावर्तन करता है। प्रवृति का पुनरावर्तन अन्तर रस का साक्षी है नियमन के मार्ग में जाते बालक में ऐसा पुनरावर्तन स्वाभाविक है। बच्चे का सच्चा ज्ञान या शक्ति पुनरावर्तन में से ही जागृत होती है।

बच्चा दरअसल कुछ सीखा है या क्या? उसकी तसदीक उस पर से हो सकेगी कि वह सीखी हुई वस्तु का कितनी बार पुनरावर्तन करता है। कोई भी बात सीखे बाद यदि बच्चा आनन्दपूर्वक, सन्तोषपूर्वक, उसको बार २ करने में आनन्द का अनुभव करे तो समझना चाहिये कि उसको सच्चा ज्ञान हुआ है और वह विकाश के सच्चे मार्ग पर है इससे उलटा हमारी पाठशालाओं के अन्दर पुनरावर्तन की मुमानियत है। जब शिक्षक विद्यार्थी को पूछता है तब जिनको प्रश्नों का उत्तर आता हो वे उत्तर देने को ऊंचे नीचे होते हैं। वे अपने हासिल ज्ञान का पुनरावर्तन मांगते हैं परन्तु वहां तो शिक्षक कहता है "तुम नहीं, तुमको आता है" और जिनको नहीं आता है उनसे सवाल पूछता है परन्तु वे उसका उत्तर नहीं दे सकते हैं। जो जानते हैं उनको नहीं पूछा जाता है और जो नहीं जानते हैं उनसे पूछा जाता है कारण यह है कि हम यह मान बैठे हैं कि किसी भी विषय के ज्ञान की परिसमाप्ति एक दफा ज्ञान हो जाने में है न कि उसके पुनरावर्तन में।

परन्तु हमको अनुभव है कि हमको जिसकी बहुत ही इच्छा है और हम जिसको बहुत चाहते हैं और जिसके लिये हमारी अन्दर की चाह है उसको हम बार २ किया करते हैं एक बार भूली हुई सङ्गीत के चीजों की पंक्ति हम बार २ गाते हैं। जो किस्सा कहानी हमें पसन्द है। और जिसको हम बहुत अच्छी

तरह से जानते हैं उन कहानियों को बार २ दूसरों को कहना चाहते हैं। इन कहानियों में हर समय कोई नवीनता नहीं होती है तो भी हम बार २ कहते हैं। प्रभु की प्रार्थना अनेक बार करने पर भी बार २ उसको करने में आनन्द का अनुवभ होता है और वह हमेशा नई प्रतीत होती है। दो प्रेमियों को परस्पर अगाध प्रेम की इतनी अधिक श्रद्धा होती है तो भी जब तक उसका अन्त न हो तब तक वे एक दूसरे को चाहते हैं।

इस तरह नियमन में पुनरावर्तन का स्थान महत्व से भरा हुआ है। जब बच्चे पुनरावर्तन करने की स्थिति पर पहुंचे तब समझना चाहिये कि वह स्वयम् विकास के मार्ग पर है इसका बाह्य चिह्न स्वाधीनता अथवा नियमन है। बेशक सब बच्चे पुनरावर्तन करने में बराबर नहीं होते हैं। पुनरावर्तन का आधार अन्दर की आवश्यक्ता पर है। इस वक्त बाल विकाश में आवश्यक साधन बच्चे के पास रखने के हैं। यद्यपि अमुक आवश्यक्ता के समय विकाश का योग्य साधन उसके हाथ नहीं लगा और उसकी उम्र बढ़ती गई तो जिस योग्य वय में विकाश सम्भवित था वह जाता रहा इसलिये विकाश फिर कभी नहीं हो सकेगा। इससे अक्सर ऐसा होता है कि बच्चा उमर में बढ़ जाता है परन्तु विकाश में अधूरा रह जाता है अतएव यह नुकसान कभी भी बराबर नहीं हो सकता।

ज्यों नियमन आज्ञा से नहीं आता है त्यों शीघ्र २ प्रवृतिओं करने से अथवा प्रवृतिओं करने से नियमन नहीं आता है। नियमन विकाश का परिणाम है। विकाश क्रमशः और धीरे २ होने वाली क्रियाओं का फल है इसलिए बच्चे को अपनी इच्छित प्रवृतिओं और उसकी गति से कराने की पूर्ण अनुकूलता देनी चाहिये और बिना प्रयोजन बीच में नहीं आना चाहिये।

बच्चे जब कोई काम हाथ में लेते हैं तब वे काम को अत्यन्त धीरे २ करते दिखते हैं। ऐसी बातों से हमारे और उनके जीवन में भिन्नता होती है। छोटे बालक अपनी मन पसंद क्रिया करते हैं जैसे कि कपड़े पहिनना, कपड़े उतारना, कमरा साफ करना, नहाना आदि धीरे २ बहुत ही उत्साह से करते हैं इन सब बातों में उनकी धीरज अनहद होती है। अभी उनकी शक्ति विकाश के मार्ग पर है अतएव उनको बड़ी मुश्किली पड़ती है परन्तु वे उसको धीरज से दूर करते हैं परन्तु हम बालकों को कहते हैं "अरे! यह तो फिजूल समय खोता है

बिना कारण श्रम उठाता है ऐसा कह कर हम लोग बिना कारण ही बच्चों के काम में दखल करते हैं और एक ही क्षण में उसके बजाय काम कर देते हैं उसी के अनुसार बच्चे को कपड़े पहिनाते हैं और नहलाते हैं उसको जो २ पदार्थ फिराने पसन्द हैं वे उसके हाथ में से ले लेते हैं। हम उसको परोसते हैं और खिलाते हैं यहां पर भी हम इसी मान्यता की भूल करते हैं कि कोई भी काम करने में इस काम का उद्देश है। इस तरह बच्चों के बजाय काम करके हम उनको अपंग बनते हैं और फिर हम ही उनको अयोग्य और काम को नहीं सीखने वाले कहते हैं। उत्तम में उत्तम उद्देश से भी जो दूसरे पर अधिकार भोगता है उन्हीं की न्याय पद्धति ऐसी होती है कि जिस तरह मजबूत प्राणी जीने के हक के लिए लड़ता है त्यों बच्चा जिसका अन्तर आवेश जो कि नैसर्गिक प्रेरणा है जिसका वह सन्मान करने को दौड़ता है उसका जो कोई विरोध करता है उनके सामने लड़ता है और रोकर, शोरकर या हाथ पैर जोर से हिलाकर बताता है कि उसके उपर जुल्म हो रहा है। उसके जीवन के मार्ग में से जो कोई उसको दूर करते हैं वे उसको नहीं समझते हैं और मदद करने के भ्रम में जीवन के सच्चे मार्ग से उल्टा उसको वापिस ढकेलते हैं वे उसको लूटेरा, बलवा खोर और किराये का टट्टू गिनते हैं। तो भी बच्चा अपने ऊपर होने वाले जुल्म के सामने अपना बचाव करता है तब उसको हम एक तरह का तोफानी गिनते हैं। वे मानते हैं कि छोटे बालक स्वभाव से तोफानी होते हैं परन्तु ख्याल करो कि हम लोग जादूगर के जाल में फंस गये हैं और हम सदा के माफिक काम करते हैं तो भी वह जादूगर हमला करता हो उस तरह आ जाता है और हम लोगों को कपड़े के अन्दर शीघ्रमय भर देता है अथवा हमें शीघ्र कपड़े पहिना देता है हमें ऐसी झड़प से खिलाने लगे कि गले उतारना भी मुश्किल हो जाय। संक्षेप में हम जो कुछ करते हैं वह उसको आँख पलक के समय में बदल देता है। और हमें केवल निष्क्रिय और निर्वीर्य बना देता है। उस समय हमारी क्या दशा होती है? हमारे ऊपर आई हुई आपत्ति में हम अपने बचाव के लिये शोरगुल करते हैं और इस राक्षस समान जादूगर के सामने हो जाते हैं तब वे कहेंगे 'कि जब उत्तम उद्देश्य से इन लोगों की सेवा उठाते हैं तब तोफानी, उद्धत और कुछ भी नहीं सीखनेवाले कहते हैं कुछ इसी तरह का बच्चों और बड़ों के बीच में चलता है। बच्चा विकाश के मददगार साधन ढूंढता है

उस वक्त हमें उनके बीच में नहीं पड़ना चाहिये और न अनावश्यक साधन उन के ऊपर डाल कर उनको करने का फर्ज नहीं डालना चाहिये। एक मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थी ने ढाई वर्ष के बच्चे को टेबल पर पड़ा हुआ लिखने का लम्बचौरस पेंड, दवात रखने की गोल बैठक आदि से खेलता देख रहा था इसी बीच में उसके मा और बाप ने बालक को एक दम खिंच लिया और लड़ने लगे और साथ ही साथ यह भी कहने लगे कि बड़ा तोफानी है इसी तरह हम बालकों के ज्ञान के लिये जो वे लेते हैं या ढूंढते हैं तब हम उनको डराते हैं। बालक में पदार्थ उठ कर देखने की जो स्वाभाविक वृति है जो उसको योग्य तौर से शिक्षित करने की जरूरत है। ऊपर कहे अनुसार बच्चा लिखने के लम्बचौरस पेंड पर अथवा तो दवात की गोल बैठक पर अथवा तो दूसरे पदार्थों पर आता है तब मजबूत मनुष्य हरवक्त दखल करते है इसलिये बालक उनको लेने का प्रयत्न करता है परन्तु बड़ों के सामने उसका कुछ न चलने से आखिर-कार निराश और निष्फल होकर क्रोधायमान हो जाता है परन्तु उसका कुछ न चलने से पड़ा रहता है। इस वक्त उसके प्राण बल का सच्चा व्यय होता है। जब बालक बुद्धि और शरीर को घड़ने का प्रयत्न करता है तब उस तोफानी कहा जाता है इस तरह की सब क्रियाएं न करने देने से बालक को आराम मिलेगा यह उनके मा बाप की धारणा हो तो वे भूल करते हैं। सच्चा आराम तो इच्छानुसार विकाश के मददगार साधनों को काम में लाने में है।

हम ख्याल करते हैं कि बच्चे को आज्ञा देकर कोई भी काम कराया जाय तो बच्चे की क्रिया शक्ति खिलेगी और उसके परिणाम स्वरूप उसमें नियमन आयगा। हमारा यह भ्रम है कि बालक की क्रिया शक्ति हुक्म माफिक काम करने से खिलती है। और हम मानते हैं कि यह काम फरजीयात हो सकता है इस फरजीयात काम को हम लोग बच्चे की आज्ञाधीनता के नाम से पहिचानते हैं। मुख्यतः छोटा बच्चा हमको आज्ञांकित मालूम होता है वह जब चार पांच वर्ष का हो जाता है तब वह बहुत जिद्दी हो जाता है कि हम उसको आज्ञांकित बनाने में करीब २ निष्फल और निराश हो जाते हैं और उस दिशा में हम अपना प्रयत्न छोड़ देते हैं। हम नियमन के गुणों की बालक के पास प्रशंसा करते हैं। हमारी रूढ़ी अनुसार हम बालक में ये गुण साफ तौर पर चाहते हैं तो भी हम महा मुसीबत

स बालक को संयमित बना सकते हैं इससे हम नियमन पर अधिक भार रखते हैं। परन्तु जो वस्तु अन्दर से आनी चाहिये वह प्रार्थना से अथवा हुक्म से अथवा जोर जुल्म से प्राप्त नहीं हो सकती है। हर आदमी ऐसा मानने की सामान्य भूल करता है। सच और विचित्र बात तो यह है कि हम छोटे बालक को संयमित बनने का कहते हैं तब वस्तुतः हम उस से आकाश चन्द्र मांगते हैं।

सच्चा नियमन किसमें है? उसका हमें विचार करना चाहिए सामान्यतः बच्चा में नियमन कुदरती है। कुमार अथवा युवान में यह स्वाभाविक है। मनुष्य में यह स्वयंमेव जन्म लेता है। जनता का यह एक अत्यन्त बलवान लक्षण है। मनुष्य हृदय में इस वस्तु की प्रेरणा बहुत दृढ़ है। चमत्कारिक नियमन के गुण पर ही सामाजिक जीवन की नींव खड़ी है। समाज जीवन में नियमन पाया रूप है। नियमन का जो राज मार्ग है उसके ऊपर संस्कृति रथ चला करता है। संक्षेप में समाज की इमारत के नीचे नियमन की नींव है।

नियमन अर्थात् स्वार्पण। इस संसार में नियमन के प्रसङ्ग बहुत ज्यादा हैं उनको हम अच्छी तरह से पहिचानते भी नहीं हैं। जो वीर लश्कर के नियमन के अनुसार जीवन सुधा समर्पण करता है उसकी हम तारीफ करते हैं। परन्तु जो वहां से भाग जाता है उसको बदमाश या मूर्ख कहते हैं। अक्सर लोगों को, जो मनुष्य उनको जीवन मार्ग में ऊंचे चढ़ाता है उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करने का अध्यात्मिक अनुभव होता है उसको आज्ञा उठाने के लिए ही यदि भोग देना पड़े तो वे देने को तैयार हो जाते हैं।

नियमन ही जीवन का कानून है। बच्चे में वह आ सकता है परन्तु अभी हमने बच्चों को नहीं पहिचाना है नियमन की शक्ति को बढ़ाने के लिये उनमें जिस क्रिया शक्ति की जरूरत है वह बढ़ाने नहीं दी गई है इससे उलटा हम उनके काम में दखल करते हैं सिर्फ इच्छा से ही संयमित नहीं हो सकते हैं उसके लिए मनुष्य में क्रिया शक्ति का बल होना चाहिये। जब हम बच्चे को कोई काम का हुक्म देते हैं तब हमारे कथन में यह गर्भित रह जाता है कि हुक्म उठाने के लिये बच्चों में क्रिया करने की शक्ति है या नहीं है। यदि बालक में क्रिया शक्ति और बुद्धि का बराबर विकाश हुआ हो तो नियमन स्वाभाविक है।

क्रिया शक्ति और बुद्धि की यथाक्रम शिक्षा का प्रबन्ध रचने में ही बच्चे को आज्ञांकित अथवा संयमित बनाने की योजना है। इस पद्धति में जो २ साधन रखे गये हैं उनमें का हरएक से कार्य करने में क्रिया शक्ति का विकाश है जब बच्चा कोई भी क्रिया भिन्न २ स्नायुओं के सहकार से पूर्ण करता है अथवा तो क्रिया करने के आवेश को रोकता है तब वह अपनी क्रिया शक्ति को शिक्षा देता है। ध्यान के खेल में अक्सर क्रियाओं को रोकना पड़ता है। जब तक उसको कुछ नहीं कहा जाय तब तक शान्ति से बैठने में, पूछा जाय तब धीरे २ चलने में और सम्हाल से बैठने उठने आदि में निष्क्रियता की क्रिया शक्ति बढ़ती है। क्रिया करके अथवा क्रिया करने के आवेश को छोड़ कर दोनों तरह से क्रिया शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

गणित में भी क्रिया शक्ति की तालीम मिलती है। जब बच्चे को संख्या की चिट्ठी लेकर लिखे अनुसार चीजें लाना पड़ती है तब उसको अपनी इच्छा पर काबू रखना पड़ता है। बच्चे को बहुत से खिलोने लेने की इच्छा होती है परन्तु चिट्ठी के कारण उसकी वृत्ति संयमित होती है परन्तु जब उस के शून्यों की चिट्ठी आती है तब उसको निष्क्रिय होकर बैठना पड़ता है। शून्यों का अर्थ सीखने के लिये जो पाठ दिया जाता है उसमें इस तरह की क्रिया शक्ति को बहुत विकाश मिलता है। जब बच्चे से बिन्दु (शून्यों) पर अनुक्रम से बुलाया जाता है तब उसको हरएक बिन्दु पर चुंबन लेने का कहा जाता है तब बहुत अच्छा खेल होता है। बच्चा स्थिर और शान्त रहने का बहुत प्रयत्न करता है परन्तु यहां पर भी क्रिया शक्ति की शिक्षा का समावेश है। जब बच्चे खाने बैठते हैं तब उनको परोसने में भी बहुत तरह से क्रिया शक्ति खिलती है।

क्रिया अथवा क्रिया रोध करना पड़े और इस तरह की तरह २ की प्रवृत्तियों करने में ही क्रिया शक्ति को बल और विकाश मिलता है। बालागृह के सब खेलों द्वारा क्रिया शक्ति खूब खिलती है। बालागृह में बच्चा व्यवस्था, सौन्दर्य दृष्टि, इन्द्रिय विकाश, लेखन और पढ़ना सीखता है। इतना नहीं परन्तु इसके पीछे सच्ची शिक्षा तो क्रिया शक्ति के विकाश की है। प्रत्येक पल वह अपनी इस शक्ति को बढ़ाता ही जाता है यही क्रिया शक्ति नियमन का प्राण है।

हम बार २ ऐसा सुनते हैं कि बच्चे की क्रिया शक्ति को हमें तोड़ देना चाहिये। क्रिया शक्ति को बढ़ाने की उत्तम रीति तो यही है कि बच्चे को अपनी क्रिया शक्ति को बड़ों के स्वाधीन कर देना चाहिये अर्थात् उनको हमारे आधीन बरतना चाहिये। बच्चों पर हम जो जुल्म करते हैं वे कितने अन्याय भरे हुए हैं उनको अलग रख दिये जायें तो भी विचार तर्क विरुद्ध मालूम होता है। बच्चे के पास जो वस्तु नहीं है उसको बड़े कहां से दे सकते हैं। हम स्वयम् ही उनकी क्रिया शक्ति को बढ़ाने में दखल करते हैं अतएव आज्ञा, स्वाधीनता, चारित्र आदि गुण जिसका कि आधार क्रिया शक्ति पर है कैसे उनमें आ सकते हैं ?

जहां देखो वहां आज शिक्षा परिषदों में शिक्षा के विषय में बहुत कुछ कहा जाता है और यह भी कहा जाता है कि आजकल के विद्यार्थियों में चारित्र बल नहीं है तो भी ये व्याख्यान देनेवाले इस बात की जरा भी परवाह नहीं करते हैं कि ऐसी स्थिति होने का कारण क्या है ? दरअसल देखा जावे तो इसका कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली ही है अर्थात् क्रिया शक्ति के विकाश का विरोध। बच्चे को कार्य करने नहीं देना और हमें कार्य करना, बच्चे को पढ़ने नहीं देना परन्तु हमें खुद उसको पढ़ाना, बच्चे को विचार करने नहीं देना परन्तु उसके विचारों में दखल करना आदि ये क्रिया शक्ति की शिक्षा की विरोधी बातें हैं। चारित्र बलजोरी से नहीं हासिल होता है। इसका सच्चा उपाय तो मनुष्य का विकाश—उसका शरीर, मन आदि की प्रवृत्तियों को स्वाधीन करने में ही है।

स्वातंत्र्य।

स्वातंत्र्य अर्थात् प्रवृत्ति। स्वाधीनता में से ही संयमन और व्यवस्था प्रगट होती है परन्तु कोई यह सवाल करे कि स्वतंत्र बच्चों के वर्ग में व्यवस्था कैसे रखी जाय ? प्रश्न अस्वाभाविक नहीं है कारण कि आजकल की पाठशालाओं में बच्चों की प्रवृत्तियों को रोक कर एक ही उपाय से शान्ति और व्यवस्था रखी जाती है परन्तु यह शान्ति मृत देह की है चेतन की नहीं है, यह व्यवस्था जड़ पदार्थों की है, जीवंत जीवों की नहीं है।

संयमित वह है जो अपने आप का राजा है अतएव जब उसको जीवन में कोई कार्य करने की आवश्यकता मालूम होती है तब उस सम्बन्धी वह अपना वर्तन योग्य तौर पर मोड़ सकता है। इस तरह की सक्रिय संयमितता बच्चों में लाना सरल नहीं है तो भी इस एक ही वस्तु पर जीवन का आधार है। अधिकार के बल से उत्पन्न संयम कि जो जड़ है, वह अचलायमान है, वह उससे भिन्न वस्तु है।

विकसित बच्चे को स्वाधीनता मिलनी चाहिये उसका अर्थ यह है कि उसको विकसित परिस्थिति में प्रवृत्ति की पसंदगी की उसको स्फुरणा हो तब प्रवृत्ति करने की छूट मिल जानी चाहिये। स्वतंत्र का अर्थ अतंत्र तथा परतंत्र दो में से एक भी नहीं होता है। हम दूसरों के आचारों में से बच्चे को मुक्त करके उस को खुद के आधार पर रखने का ही नाम उसको स्वतंत्र मार्ग में ले जाना है।

उक्त स्वतंत्रता की एक मर्यादा सामुदायिक हित की है हम सामुदायिक हित को सभ्यता अथवा खानदानी के नाम से पहिचानते हैं इससे बालक जब २ दूसरे को चिढ़ाय या तंग करें अथवा सभ्य और अयोग्य कार्य करें वहां पर हम उनको रोक सकते हैं इसके सिवाय दूसरी सब उपयोगी प्रवृत्ति किसी भी रूप की ही क्यों न हो उसम हमें दखल नहीं करना चाहिये। बच्चा बराबर जिस क्षण में काम करना शुरू कर देता है उस क्षण की स्वयंस्फूरित क्रिया को यदि खराब करें तो उसके बहुत खराब परिणाम आते हैं। इस तरह हम खुद जीवन को खराब करते हैं। ज्यों उषःकाल में सूर्य भव्य दिखता है और फूल ज्यों अपनी पहिली पंखड़ी को विकसित करता हुआ भव्य दिखता है त्यों समष्टि अथवा जनता का यह नाजुक अथवा सुन्दर बाल्यकाल भव्य दिखता है इसलिये उसको धार्मिक भावना से सन्मान देना चाहिये। शिक्षा की कोई भी क्रिया सफल होगी तो वही क्रिया सफल होगी कि जो जीवन में सम्पूर्ण विकाश को मदद करनेवाली होगी। इस विकाश के मददगार होने के पहिले शिक्षक को चाहिये कि वह बच्चों की स्वयंस्फूरित हिलचाल को न रोके तथा अपनी इच्छानुसार काम बालक पर न लादें यह बात मुख्य करके शिक्षक को सीखनी चाहिये।

अलबत्ता बच्चे के नकाम अथवा जोखम भरे हुए कामों को कोई शिक्षक न पोषें उसको दबा दे अथवा उसका नाश करें। परन्तु इस विषय में शिक्षक को तालीम लेना चाहिये। योग्य अथवा अयोग्यता का निर्णय करने का सूक्ष्म विवेक सीखना चाहिये।

स्वाधीनता का सच्चा मार्ग बताने के लिये बच्चे के लिये खराब क्या? और अच्छा क्या? उसका खयाल देना चाहिये। पुराने आदर्शों के अनुसार हिलेचले बिना बैठ रहने का नाम ही सज्जनता, भलाई यानी अच्छा और क्रिया करना इसका नाम खराब। शिक्षा फैलाने वाले का कर्त्तव्य यह है कि उसको बच्चे के मन पर रटाना या बिठाने को अच्छा नहीं कहते हैं काम करने के लिये समतोलता प्राप्त करने का नाम संयमन। कुछ न करते अक्रिय होना, बैठे ही रहना अथवा सिर्फ कहने माफिक ही करना इसका नाम संयमन नहीं है।

जिस कमरे में सब बालक कुछ न कुछ उपयोगी काम करने के लिये बुद्धि और इच्छा पूर्वक हीलचाल करते रहते हैं और किसी भी तरह का असभ्य जंगली अथवा खराब वर्तन नहीं करते हैं उस कमरे को स्वतंत्र और व्यवस्थित समझना चाहिये।

दूसरी शालाओं के माफिक बच्चों को एक हार में बैठाने का प्रत्येक की जगह निश्चित करने का और सारे वर्ग को हो सके उतनी शान्ति से बैठने की आज्ञा आगे चल कर हो सकेगी। जीवन के बहुत प्रसंगों पर हमे शान्त रहना पड़ता है जैसे कि सभा में अथवा जलसे में और हम जानते हैं कि हमारे जैसे बड़ों को भी व्यक्तित्व इच्छाओं का बहुत भोग देना पड़ता है। जब व्यक्तिगत संयम उत्पन्न हो सके तब ही ये हो सकता है। बच्चों को व्यवस्थित और कतारवार उनकी जगह पर बैठाना। ऐसा करके उनके मन में ऐसा खयाल रखने का प्रयत्न करने का है कि इस तरह बैठने से वे सुन्दर दिखते हैं इस तरह व्यवस्थित बैठना अथवा व्यवस्थित करना यह अच्छी रीति है और इस तरह की व्यवस्था कमरे की शोभा को बढ़ाती है। इस तरह से तरह २ के दिशा सूचक पाठ देने से व्यवस्था साधी जा सकती है। हुक्म करने से साधी नहीं जा सकती है। बच्चों के पास यह काम जोर जुल्म से कराने में फायदा नहीं है

ऐसा करने से वे सच्ची समूहगत व्यवस्था सीख भी नहीं सकेंगे। जो अगत्य की बात है वह उनके मन पर अमुक तत्व अथवा विचार की छाप बिठाने का है फिर वे उस विचार को धीरे २ अपना करके व्यवहार में रख सकेंगे।

एक दफा व्यवस्थितपन का खयाल आने बाद तो बच्चे अपनी जगह से उठेंगे इधर उधर फिरेंगे, बात करेंगे, जगह की अदला बदली करेंगे परन्तु वह बिना विचार अथवा बिना जाने नहीं करेंगे। शान्ति और व्यवस्था के सच्चे खयाल के बाद वे ऐच्छिक क्रिया करने को जायेंगे। अमुक काम करने की रुकावट है इसका ज्ञान होने से वे समझ सकेंगे कि यह नया खयाल उनके लिये अच्छा है या खराब है? उसके बीच में विवेक काम में लाने का नया उत्साह प्रेरित होगा व्यवस्था उत्पन्न हुए बाद दिन ब दिन बच्चों की हीलचाल अधिक सम्पूर्ण और सहायक होती जायगी वे खुद के काम का विचार करना सीखेंगे। शुरू ही शुरू की अव्यवस्था में से बच्चे धीरे २ कैसे व्यवस्थित हुए उसके अवलोकन की नोट बुक ही शिक्षक के पढ़ाने का ग्रन्थ है। दरअसल शिक्षक सच्चा शिक्षक होना चाहता हो तो उसको ये ही पढने की और इसका अभ्यास करने की आवश्यकता है। प्रथम ही प्रथम बच्चे की अव्यवस्थित हीलचाल में उसकी रुख नहीं मालूम होती है परन्तु जब उसमें व्यवस्था आती है तब वह अपने आन्तरिक रूख के अनुकूल प्रवृत्ति करने लगता है और उसके द्वारा वह अपने आपको व्यक्त करता है। यदि ऐसा हम उसको करने दें तो वैयक्तिक फेर फार अच्छी तरह से मालूम हो सकते हैं और हम अजायबी पर ताज्जुब करने लग जाते हैं स्वतंत्र और जागृत अर्थात् व्यवस्थित बच्चा ही अपने आप को प्रगट कर सकता है।

बालगृह में अनेक तरह के बच्चे देखने में आयेंगे बहुत से अपनी जगह पर आलस से बैठे हुए, बेदरकार और निद्रावाले मालूम होंगे और बहुत से ऐसे लोग जो लड़ने वाले हों, अथवा दूसरे पदार्थों का ऊंचे नीचे करने वाले अथवा अपनी जगह को छोड़ कर इधर उधर फिरते होंगे तो बहुत से ऐसे भी होंगे जो अमुक हेतु पार पाड़ने के लिये टेबल फिराते होंगे अथवा अमुक जगह कुर्सी पर बैठने के लिये कुर्सी फिराते होंगे अथवा चित्र देखते रहेंगे। बहुत से मानसिक विकाश में पीछे मालूम होंगे, बहुत से शरीर से बीमार होंगे, बहुत से

चारित्र में पीछे मालूम होंगे, बहुत से बुद्धिशाली मालूम होंगे। बुद्धिशाली बच्चे एकदम परिस्थिति के अनुकूल होने की शक्तिवाले होंगे, अपनी पसंदगी नापसंदगी बताने में समर्थ होंगे, अपनी स्वयंस्फूरित एकाग्रता की शक्ति और रुक बताने को शक्तिमान होंगे और अपनी शक्ति मर्यादा भी बतायेंगे।

प्राणी और वनस्पति शास्त्र में प्राणी और वनस्पति के अवलोकन से समझ में आवेगा कि विषय में स्वतंत्रता का जो अर्थ किया जाता है वही अर्थ बच्चे की स्वतंत्रता के विषय में करने में नहीं आता है। बच्चा जन्म से ही अमुक तौर पर पराधीन पैदा होता है और सामाजिक व्यक्ति के तौर पर उसमें अमुक गुण होते हैं अतएव वह बंधनों से गिरा हुआ है ये बंधन उसकी क्रिया को मर्यादित करता है।

स्वाधीनता पर रची हुई शिक्षा पद्धति का काम यह है कि बच्चे को स्वतंत्र होने की शिक्षा देने के लिये आगे आना है। स्वतंत्र परिस्थिति में धीरे २ बच्चा ज्यों २ आगे बढ़ता जाता है त्यों २ वह अपने आपको अधिक और अधिक व्यक्त करता जाता है। वह अपना मूलस्वभाव अधिक निर्मलता से बाहिर लायेगा। इन सब कारणों की वजह से शिक्षा में प्राथमिक ही बालक को स्वाधीनता के मार्ग में ले जाने का है। एक दफा स्वतंत्रता का सिद्धान्त स्वीकार किया अर्थात् शिक्षा और इनाम अपने आप ठीक हो जाते हैं। स्वतंत्रता के परिणाम से संयमी मनुष्य सदा ऐसे सच्चे इनामों की स्पृहा करता है कि जो उसको कभी हलका नहीं पड़ने देगा अथवा निराश नहीं होने देगा इस विषय में डा० मोन्टेसोरी अपने अनुभव के दृष्टान्त देती है। वह लिखती है कि एक दफा वह एक शाला को देखने गई जिसका इन्तजाम उसके ही सुपुर्द था। वहां शिक्षक ने उसकी पद्धति के बजाय दूसरी युक्तियें दाखिल की थीं।

एक बुद्धिशाली बच्चे के गले में चांदी के तार से बंधा हुआ एक क्रॉस देखा। दूसरा बच्चा इरादापूर्वक कमर के बीच में रखी हुई आराम कुर्सी पर बैठा था। पहिले बच्चे को इनाम दिया गया था तब दूसरा बच्चा शिक्षा सहन कर रहा था। जब शिक्षक ने डा० मोन्टेसोरी को देखा तब शिक्षक कुछ नहीं कह सका और स्थिति वहां पर जैसी थी वैसी की वैसी कायम रही। उसको यह देखना ठीक जचा। जिसके गले में क्रॉस लटक रहा था वह प्रवृत्ति में रुका

हुआ था उसका ध्यान क्रॉस की तरफ नहीं था। उसके मुंह पर श्रम और उद्योग के चिन्ह थे। बार २ वह भी उस कुर्सी में बैठे हुए बच्चे के पास से जाता था। एक दफा उसके गले से वह क्रोस गिर गया। कुर्सी में बैठे हुए बच्चे ने उसको उठा लिया और उस प्रवृत्ति में लीन बच्चे से पूछा "क्या पड़ा है उसकी तुझे खबर है?" उद्योगी बच्चे ने सिर्फ दृष्टि से जवाब दिया "मैं काम में लीन हूं मेरे काम में दखल होती है, मुझे क्रोस की परवाह नहीं है।" उस ने जोर से कहा "मुझे जरूरत नहीं है" उस बालक ने कहा "निःसंदेह तुम्हें जरूरत नहीं है तो मैं उसको रक्खूंगा और काम में लाऊंगा" इसका उत्तर उसने यह ही दिया कि खुशी से पहिनो परन्तु गड़बड़ मत करो।

उस आराम कुर्सी पर बैठे हुए बच्चे ने क्रोस को गले में पहिना, सुख से आराम कुर्सी में सो गया। आनन्द प्रदर्शित करते हुए अपने दोनों हाथों को कुर्सी पर रक्खे। यह क्रोस ही था कि जिसकी वजह से वह इतना आनन्द और संतोष अनुभव कर रहा था परन्तु जिसको क्रिया में से आनन्द और संतोष मिल रहा था उसको क्रोस की कुछ परवाह नहीं थी परन्तु दूसरे बालक को तो वही वस्तु महत्व की मालूम हुई उसको दूसरी आनन्द देनेवाली वस्तु ही नहीं थी।

एक दफा मैं और एक स्त्री पाठशाला को देखने गये उसके पास तख्मे की पेटी थी। उसने पाठशाला में उसको खोली और कहा कि इसमें से हर एक बालक के एक २ तख्मा लगाओ। मैंने कहा नहीं। शिक्षक ने पेटी को हाथ में ली। इस वक्त एक छोटा बच्चा टेबल पर बैठा २ काम करता था उसने भौंह चढा कर कहा "बच्चों के लिए नहीं, बच्चों के लिये नहीं।" इस बालक को किसी ने कुछ नहीं कहा था तो भी वह जानता था कि वह वर्ग में सब से होंशियार है अतएव उसने इनाम से अपमानित होने के लिये इनकार किया यह कितनी बड़ी अजाइबी भरी बात है। यह एक बड़ा चमत्कार था। अपना रुतबा दूसरी तरह से कैसे सम्हालना इस बात की उसको जरा भी खबर नहीं थी अतएव उसने 'बालकों को नहीं' ऐसा कह कर अपनी जाति की श्रेष्टता का शरण लिया।

हमारा ऐसा अनुभव है कि अकसर बच्चे हमारा कुछ भी सुने बिना और हमारी परवाह किये बिना बहुत से बच्चों को खलल पहुंचाते हैं। ऐसे

किसी भी बालक की शीघ्र डाक्टर से शोध कराते हैं परन्तु जब यह मालूम हो जाता है कि उसके शरीर में कोई दोष नहीं है तब उसको एक कोने में एक टेबल पर बिठा कर अलग रखते हैं। उसके मन पसन्द खिलौने और साधन देते हैं। यहां रह कर वह दूसरे बालक कैसा काम करते हैं वह देखता है यहां पर उनका काम उसको सबक रूप हो जाता है। जो बालक उद्योगिक और अव्यवस्थित बालकों के सामने बलवा करते हैं उनको हम इस तरह से व्यवस्थित करके ठिकाने लाते हैं। अलग रक्खे हुए बालक की बीमार के माफिक सम्हाल ली जाती है। मैं कमरे में रक्खे हुए अकेले बालक के पास जाती हूं उसको प्यार करती हूँ और बाद में काम करते हुए दूसरे बालकों की तरफ दृष्टि फिराती हूं और उनके साथ उनके काम के संबंध में बातचीत करती हूं।

यदि शिक्षा में सच्ची स्वतंत्रता आ जाय तो दूसरी मुश्किलियों के साथ साथ इनाम की प्रथा का भी अन्त आ जायेगा और बालक स्वयं स्फुरणा से स्वतंत्र प्रवृत्ति करता २ स्वाधीनता के मार्ग से जायेगा और उसमें स्वमेव नियमन प्रगट हो जायेगा।

साधन मीमांसा

मोन्टीसोरी पद्धति में किस बात पर अधिक भार देगा और किस बात पर कम भार देना यह कहना अत्यन्त कठिन है। अक्सर मनुष्य तो ऐसा ही कहते हैं कि सारी पद्धति महत्व पूर्ण है और यह पद्धति सिद्धान्त पर ही रची गई है। दूसरी सब बातें इसमें गौण हैं और उनके बिना काम चल सकता है। मोन्टीसोरी पद्धति के पक्के उपासक यहां तक कहते हैं कि मोन्टीसोरी पद्धति अर्थात् मोन्टीसोरी पद्धति के साधन। इनके बिना मोन्टीसोरी पद्धति से कार्य नहीं हो सकता। अक्सर सहानुभूति दर्शानेवाले मनुष्यों का यह कहना है कि सिद्धान्त और साधन आदि की बात तो ठीक है परन्तु महत्व की बात तो व्यक्तित्व की है। डा० मोन्टीसोरी के व्यक्तित्व के बिना मोन्टीसोरी के सिन्द्धात और साधन दोनों योंहीं पड़े रहते हैं। बहुत से नासमझ लोग यह समझते हैं कि सब कुछ सिखाने में ही है। साधन आदि तो निमित मात्र हैं। बहुत से शिक्षा शास्त्री ऐसी शंका करते हैं कि साधनों द्वारा पद्धति की जो विजय बताई

गई है उसमें कुछ गैरसमझ का हो जाना सम्भावित है। बहुत से उदार शिक्षा शास्त्री सब बातों को स्थान देने का कहते हैं परन्तु महत्व की वस्तु तो अनुकूल वातावरण अर्थात् परिस्थिति को ही गिनते हैं। बहुतसों का यह भी मानना है कि मोन्टीसोरी साधनों से किन्डरगार्टन शाला के साहित्य से अधिक फायदा हो सकता है और वे साधन किन्डरगार्टन के सदृश आकर्षक नहीं होते, और न वे सर्जन शक्ति तथा कल्पना शक्ति को पोषण दे सकते हैं।

इस मतवैचित्र्य की स्थिति में हमारे लिये मोन्टीसोरी साधनों की सच्ची कीमत आंकना जरूरी है। बेशक पद्धति के सिद्धान्त तो प्राणरूप ही है इसके बिना साधन सिर्फ जड़ वस्तु ही है। इतना ही नहीं परन्तु इन सिद्धान्तों के परिपालन में ही साधनों की उत्पत्ति है।

समझने के लिये ऐसा कहा जा सकता है कि ज्यों देह और इन्द्रियें प्राण को धारण करने को, उसको व्यक्त करने को आवश्यक हैं त्यों साधनों के सिद्धान्तों के सफल करने में उनकी आवश्यक्ता है। मोन्टीसोरी पद्धति का प्राण-जीवन मोन्टीसोरी के योजे हुए साधनों में ही है। देह और प्राण भिन्न २ होने पर दोनों में से ऐक्यता के अभाव से मनुष्य के जीवन के अस्तित्व में ज्यों कमी रहती है त्यों सिद्धान्त और साधन बिना मोन्टीसोरी जीवन का टिकना असम्भव है। यदि हमें मोन्टीसोरी पद्धति की जरूरत है तो हमें उनके साधनों की जरूरत होगी। डाक्टर मोन्टीसोरी कहती है कि वह कदापि किसी देश में शिक्षा की बड़ी अधिकारिणी हो जायें तो भी जब तक लोग शिक्षा के लिये न कहें तब तक वह ऊंची से ऊंची शिक्षा जो हुक्मी से दाखिल न करेगी। परन्तु जो परिणाम डाक्टर मोन्टीसोरी ने प्राप्त किये हैं अगर इन परिणामों को शिक्षक चाहते हो तो उनको चाहिये कि वे उन्हीं साधनों को काम में लावें। यदि उनको उसके जैसा ही परिणाम लाने का आग्रह न हो तो वह उनको अपने साधन काम में लाने का आग्रह नहीं करती है। उसका तो एक ही बात का वादा है कि शिक्षक उनके साधनों में अदल-बदल करते हैं और परिणाम के लिये उसे और उसकी पद्धति को दोष देते हैं।

अक्सर मनुष्यों की ऐसी कल्पना है कि डाक्टर मोन्टीसोरी ने जो साधन बनाये हैं वे साधन उसने अपने फलद्रुप तरंग के बल से पैदा किये हैं और यह

मानने की लोगों को स्वाभाविक ही टेव हो गई है इसका कारण यह है कि आज तक की शिक्षा पद्धति तरंग पर रची गई है। अब तक मनुष्यों ने बच्चों को क्या पढ़ाना और कैसे पढ़ाना इस बात का विचार किया है परन्तु किसको पढ़ाना इस बात का विचार दोनों बातें करते वक्त लक्ष में नहीं लिया गया है। मनुष्य का लक्ष विषय की तरफ गया है व धेय तरफ नहीं। मनुष्य की दृष्टि विषय का निर्माण करते वक्त संकुचित रहती है कारण मनुष्य अपने से अधिक तेजस्वी मनुष्य की कल्पना नहीं कर सकता है। अतएव आज जो प्रजा मौजूद है उससे तेज और अधिक प्राणवान प्रजा बनाने का विचार उसके मन में नहीं आता है। मनुष्य स्वभाव से ही भावि मनुष्य को अपने सदृश बनाना चाहता है और उसी अनुसार कार्य करता है। इसलिये हमारे बीच एक ही गांधी, एक ही टागोर, एक ही लेनिन और एक ही मेक्सवनी है। ये मनुष्य की बनाई हुई शिक्षा की प्रणालिका की जड़ में से अलग हो चुके हैं इसलिये महान् हैं अथवा शुद्ध और सच्ची शिक्षा उन्होंने अपने आप ग्रहण की है उसी का यह परिणाम है। डाक्टर मोन्टीसोरी शिक्षा के विचार में परम्परा की बेड़ी से मुक्त है। गतानुगतिक कायदे के अनुसार उसके विचार की धारा नहीं है। बच्चों के लिये इतना जरूरी है कि अमुक शिक्षा बिना बच्चों का कार्य नहीं चल सकता। इन विचारों से आजकल के शिक्षा-शास्त्री जो अभ्यास क्रम रचते हैं परन्तु डॉ० मोन्टीसोरी के माफिक अपने साधनों का निर्माण नहीं करते हैं। आज तक के शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के लिये जो कुछ किया है अथवा साधन बनाये हैं तथा उनको काम में लाने के लिये जिस पद्धति की घटना घटित की है वह सबको सिखाने के विषय को लक्ष में रखकर की गई है परन्तु सीखने वाले विधेय को लक्ष में रखकर नहीं की गई है। बच्चे स्वयम् कैसा सीखते हैं उसका सूक्ष्म अवलोकन करने के बाद डाक्टर मोन्टीसोरी ने अपने साधन बनाये हैं। उसने अनेक जात के साधन बालकों के पास रखकर जाति अनुभव किया है। अनेक तरह के साधन जो बालकों के लिये निरुपयोगी सिद्ध हुये वे फेंक दिये गये। जो साधन बच्चों ने स्वयम् अपनी शिक्षा के लिये अपने आप स्वयंस्फूर्ति और किसी तरह के दबाव बिना काम में लाये और जो साधन उनके शिक्षित करने में शक्तिमान निकलें और जिन साधनों में से बच्चों को स्वयं भूल सुधारने की शक्ति मालूम हुई उन्हीं साधनों को डाक्टर मोन्टीसोरी ने बाल

विकाश के साधन गिनकर स्वीकार किये हैं। साधनों की योग्य और अयोग्यता का निर्णय करने के लिए डॉ० मोन्टीसोरी ने दो नियम रक्खें हैं। एक तो यह कि शिक्षा के काम में उपयोगी साधन वही कहा जा सकता है कि जो अपने आप बच्चे को उसको काम लाने मात्र से शिक्षा दे, तथा इन साधनों में ऐसी खूबी होनी चाहिये कि यदि वे खराबतौर से काम में लिये जायें तो बच्चे को उसकी शीघ्र खबर पड़ जानी चाहिये कि जिससे वह खराबतौर पर काम में न लिया जा सके और उसकी उसको फौरन ही खबर हो जाय और वह शीघ्रमेव भूल को सुधार सकें। साधन में स्वयम् भूल सुधारने की शक्ति है या नहीं यह जानना मुश्किल नहीं है। साधन को काम में लाने से शीघ्र उसकी खबर पड़ जाती है सिर्फ बच्चे को इससे शिक्षा मिलती है या क्या? आदि बात जानना कठिन नहीं है। जिन साधनों को बच्चा बार २ काम में लाता है वे साधन उसको शिक्षा देते हैं। स्वतंत्र स्थिति और समधारण बच्चा ऐसा कुछ काम नहीं करता है जो उसके विकाश को मदद्रूप न हो। डाक्टर मोन्टीसोरी का यह सिद्धान्त है कि बच्चा जिन २ साधनों का बार २ उपयोग करता है, जिस क्रिया के पुनरावर्तन में तल्लीन रहता है वह साधन बच्चे के विकाश का पोषक है। जिसमें मजा आता है उसी में बच्चा पुनरावर्तन करता है विकाश के लिये जिस वस्तु की जरूरत है उसी वस्तु में बच्चे को आनन्द आता है। इससे यह सिद्ध होता है कि साधनों को काम में लाने से पुनरावर्तन में ही विकाश है। साधनों के काम में लाने के पुनरावर्तन से शिक्षा आती है। साधन ढूंढ़ने के विषय में मॅडम मोन्टीसोरी अपने विधेय को अर्थात् बालक के अनुसार ही कार्य करती है। उसने बच्चे की वृति और आवश्यक्ता का अच्छी तरह निरक्षण कर साधनों का निर्माण किया है। बच्चा किस छेद में कौनसा पदार्थ डालना पसन्द करता है इस बालवृति को लक्ष में रखकर डाक्टर मोन्टीसोरी ने आँख की इन्द्रिय को शिक्षित करने के लिये दट्टाओं और टावर के साधन ढूंढ़ निकालें हैं। छेदों में कुछ न कुछ डालने की बालवृति में से यह साधन पैदा करने में अपूर्व बुद्धिबल की जरूरत है परन्तु छेदवाले पदार्थों में कुछ न कुछ साधन अनेक तरह के हो सकते हैं उनमें से इन दट्टाओं की पेटी का साधन किस तरह ढूंढ़ निकाला यह भी विचारने योग्य बात है। यह साधन इसलिये स्वीकार किया गया है कि उस पर

दूसरे सब साधनों से बच्चे अधिकतर पुनरावर्तन करते हैं। दट्टे की पेटी तो मुख्यतः जादू का काम करती है।

डॉ० मोन्टीसोरी ने जो साधन बनाये हैं उसके विषय में एक ऐसा भी विचार है कि उसने इन साधनों को बनाकर संसार का बहुत कुछ भला किया है अलावा इसके प्रकृति जिस तरह मनुष्य को अनेक तरह की शिक्षा देती है उसी तरह मर्यादित स्थिति में उसी के सदृश इन साधनों से शिक्षा देने की योजना की है अर्थात् कुदरत ज्यों मनुष्य को अनुभव कराके अपने आप ही भूल सुधारने का ज्ञान देती है उसी तरह मोन्टीसोरी पद्धति बच्चे को ज्ञान देती है यह मान्यता मोन्टीसोरी सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं है।

डॉ० मोन्टीसोरी की योजना के साधन त्रिविध विकाश को सिद्ध करते हैं। मानसिक, नैतिक और शारीरिक इन्द्रियों के विकाश के अर्थ ढूंढे हुए साधन मात्र ही इन्द्रियों की शिक्षा सिद्ध नहीं करते हैं। इन्द्रियों के विकाश के लिये जो शक्ति काम में लाई जाती है उसके पीछे हमेशा विचार रहता है और इसी विचार के प्रवाह में मानसिक हो जाता है। आगे चलकर यह भी मालूम हो सकेगा कि साधनों को काम में लाने में नैतिक विकाश कैसे संभवित हो सकता है?

डॉ० मोन्टीसोरी के साधनों में एक दूसरी भी खूबी है। मोन्टीसोरी पद्धति का उद्देश मनुष्य को सीधे रास्ते शिक्षा देने का और पढ़ाने का नहीं है। इस पद्धति का उद्देश मनुष्य को अपने अन्तर आत्मा में जो कुछ रहा है उसको यथार्थ तौर पर व्यक्त करने की शक्ति देने का है। इसका उद्देश चित्रकला, संगीत, साहित्य, इतिहास, भूगोल, वनस्पति शास्त्र सीखने का नहीं है और ऐसा सीखने के लिये ये साधन नहीं रचे गये। मोन्टीसोरी पद्धति द्वारा जो कुछ सीखा जा सकता है वह पद्धति का प्रदेश नहीं है परन्तु पद्धति का परिणाम है। मोन्टीसोरी पद्धति मनुष्य को ज्ञान सम्पादन अथवा अन्तर शक्ति व्यक्त करने का हथियार देती है। हरएक बच्चे के जीवन में एक ऐसा पल आता है कि उस वक्त बच्चा अपना अन्तर व्यक्त करना चाहता है उस पल में बच्चा सफलता-पूर्वक अपना और अपने मन की बात प्रदर्शित कर सकता है और इसीलिये डॉ. मोन्टीसोरी के साधनों का निर्माण हुआ है। मोन्टीसोरी पद्धति में अनेक तरह

के विषय सीखने नहीं पड़ते हैं। मोन्टीसोरी पद्धति मनुष्य की आँख को शिक्षित कर उसको रूप और रंग का रहस्य समझने का द्वार खोल देती है। स्पर्श की शिक्षा देकर कुदरत की अप्रितम कविता समझने की शक्ति देती है। कान को शिक्षित कर संगीत देवी का मंदिर खोल देती है। इस तरह मनुष्यों की शक्ति का विकाश कर मनुष्य स्वयं जो कुछ है उसको वैसा ही होने का प्रसंग देती है। मोन्टीसोरी साधनों को काम में लाने से मनुष्य एकदम चित्रकार अथवा गायक नहीं हो सकता है। एकदम लेखक, कवि अथवा गणितशास्त्री भी नहीं बन सकता। परन्तु वह किसी भी दिशा में जाने का सहज से सहज मार्ग बताती है इसलिये ये साधन मात्र साधन है साध्य नहीं हैं।

डॉ० मोन्टीसोरी ने जिन साधनों की योजना की है वे साधन परस्पर बहुत अगत्य का सम्बन्ध रखते हैं। एक २ साधन को भिन्न २ तौर से काम में लाने में कुछ अर्थ नहीं है। सारी साधन व्यवस्था बराबर समझने की है एक दूसरा साधन एक दूसरे को अधिक समझने के लिये कैसे उपयोगी हो सकता है उसको जानना बहुत जरूरी है।

मोन्टीसोरी पद्धति में इन्द्रियों की शिक्षा यह एक विषय, चित्रकला की शिक्षा यह दूसरा विषय, लिखने पढ़ने की शिक्षा यह तीसरा विषय नहीं है। सारी पद्धति वृक्षरूप है इसके धड़ में इन्द्रियों की शिक्षा है और चित्रकला, लिखना पढ़ना आदि शाखायें और पत्तिएं हैं और वे धड़ से सम्बन्ध रखनेवाले भी बीज में से ही निकले हैं। किसी को ऐसा समझ कर भूल नहीं करना चाहिये कि अमुक एक या दो साधन लेकर उनका इस्तमाल कराया जाय अर्थात् उस पर से यह प्रतित हो जायगा कि बच्चों में साधनों के काम लाने का लाभ आगया है। साधन समूह को काम में लाने की जरूरत है अकेला साधन निष्प्राण है, सब साधनों के साथ वह जीवन्त है। भूमिति की आकृतियों को काम में लाने में से लिखना और चित्र काम दोनों की ही दिशा खुलती है, लम्बी सीढ़ी में से गणित और कद के प्रदेशों का मार्ग दिखता है। सादी हाथ धोने की स्वच्छता का लिखने के साथ सम्बन्ध है और रंग की पेटियों के ज्ञान को चित्रकला के साथ ताल्लुक है। मोन्टीसोरी पद्धति में अकेला अक्षरज्ञान, अकेला चित्र काम, अथवा अकेला संगीत ऐसा कुछ नहीं है। सब बातों के बिना मोन्टीसोरी पद्धति कुछ काम योग्य

नहीं है। इस पद्धति की पूर्णता इसके सब अंगों की पूर्णता में है इसमें ही इसके साधनों की पूरी खूबी है। इससे मोन्टीसोरी पद्धति के साधन क्रमिक है ज्यों एक स्क्रू बिना सारा सांचा ढीला पड़ जाता है। त्यों ही एक या दो क्रम से, एक या दो पगथियों को छोड़ देने से सारे काम की गड़बड़ हो जाती है इसका अर्थ यही हो सकता है कि या तो सारी मोन्टीसोरी पद्धति को स्वीकार किया जायें वरना सारी पद्धति का त्याग किया जायें। एक या दो साधनों को काम में लाने से कोई भी पाठशाला मोन्टीसोरी पाठशाला नहीं हो सकती तथा उससे कुछ लाभ भी नहीं हो सकता।

हमने देखा कि मोन्टीसोरी पद्धति के साधन बच्चों की वृत्ति और जरूरतों के अनुसार बनाये गये हैं। यह वृत्ति और जरूरत डॉ० मोन्टीसोरी को कैसे मालूम हुई उसको हमें देखना चाहिये। अपने इधर उधर की दुनियां का ज्ञान प्राप्त करने की बच्चों को पहिले में पहिली जरूरत रहती है। वह स्वयं संसार में जीना चाहता है इससे अमुक प्रकार का ज्ञान उसको अति आवश्यक और अनिवार्य लगता है। ये ज्ञान संसार में चारों तरफ भरे हुए रूप, रंग भिन्न २ प्रकार के कद, तरह २ की मुलायम सतह, सुवास अथवा कुवास तथा स्वाद और बेस्वाद है। इस ज्ञान के प्राप्त करने के लिये बच्चे को इन्द्रिय विकाश की शिक्षा पहिले दर्जे की मिल जानी चाहिये! बच्चा इस तरह की शिक्षा द्वारा आगे बढ़ सकता है इसलिये ही इन्द्रिय विकाश के साधन मोन्टीसोरी पद्धति में अति महत्व पूर्ण हैं।

यह साधन दूना काम देता है अथवा उसके द्वारा बच्चों में आवश्यक विकाश की सिद्धि होती है। इतना ही नहीं परन्तु ये ही साधन बच्चों में और पाठशाला में व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। जिस वस्तु से बच्चे उत्साहित होते हैं उस वस्तु में बच्चा तल्लीन हो जाता है और उस तल्लीनता में ही व्यवस्था है। बिना साधन की अथवा अपूर्ण साधनोंवाली शाला में मोन्टीसोरी पद्धति अनुसार जिस तरह की व्यवस्था और सुनियमन की जरूरत है उसकी आशा नहीं रखी जा सकती है। साधनों की जितनी परिपूर्णता होगी उतनी ही अधिक सुनियमन के लिये तैयारी हो जायगी। सुनियमन यह बाहिर की वस्तु नहीं है तथा वह हो भी नहीं सकती है। जो वस्तु बच्चे को एकाग्रह बनाती है उसी

वस्तु में बच्चे को सुव्यवस्था और सुनियमन देने की शक्ति हो सकती है साधन बिना मोन्टीसोरीशाला का रखना या न रखना बराबर है।

ये साधन कहां २ हैं और वे कैसे २ होने चाहिये इसके विषय में बाद में विचार किया जायगा। परन्तु इतनी बात को लक्ष में रखना चाहिये कि हर एक साधन परिपूर्ण ही होना चाहिये। विज्ञान की प्रयोग शाला में साधन की जरा भी कमी नहीं चल सकती त्यों मोन्टीसोरी शाला में साधन की न्यूनता, या अपूर्णता नहीं चल सकती। कारण कि मोन्टीसोरीशाला प्रयोगशाला के साथ साथ शिक्षाशाला भी है। मोन्टीसोरी का प्रधान उद्देश्य शिक्षाशास्त्र की प्रयोग शाला खड़ी करने का है इससे भी खराब बनावट का, अचौकस नाप, खोड़ वाला साधन मोन्टीसोरी पद्धति में नहीं चल सकता है। हरएक साधन बराबर नाप का न बना हुआ हो तो विद्यार्थी के विकाश में विघ्न आता है शिक्षक भी पद्धति का जो स्वरूप देखना चाहता है वह नहीं देख सकता है और जो परिणाम पद्धति द्वारा सिद्ध हो सकते हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते हैं।

मोन्टीसोरी पद्धति में जो साधन हैं उन साधनों को किस तरह से काम में लाना उसके सम्बन्ध में इसके बाद कहा जायगा। परन्तु यहां इतना कहने की जरूरत है कि जो साधन जो हेतु सिद्ध करने के लिये बनाये गये हैं वे साधन उस हेतु की सिद्धि के लिये ही काम में लाये जाते हैं। इस पद्धति में प्रत्येक साधन कुछ न कुछ विशिष्ट हेतू से विशिष्ट शिक्षा के लाभ के लिये रचने में आया है। अमुक एक साधन बच्चा अपनी इच्छानुसार इस पद्धति को काम में नहीं ला सकता। जो हेतु सिद्ध करने के लिये जिस तरह साधन काम में लाने का स्पष्ट कहा गया हो उससे विरुद्ध उसको काम में लाने को डॉ० मोन्टीसोरी ठीक नहीं समझती है। इस विषय में किन्डरगार्टनीस्ट का मोन्टीसोरी के साथ मत भेद है। किन्डरगार्टनीस्ट कहते हैं कि इस तरह से साधन का उपयोग विशिष्ट और मर्यादित करने की बच्चे की सर्जन शक्ति और कल्पना शक्ति पर अंकुश रखा जाता है। किन्डरगार्टनीस्ट का यह कहना है कि मोन्टीसोरी के साधनों से जो विशिष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है वह लाभ बच्चा क्यों न प्राप्त करे। परन्तु उन साधनों द्वारा उनको दूसरी दिशा में कल्पना शक्ति और सर्जन शक्ति को बढ़ाने की रुकावट नहीं होनी चाहिये। उल्टी इससे तो

साधन की उपयोगिता बढ़ती है। डॉ० मोन्टीसोरी इस बात का प्रतिरोध करती हैं। उसकी यह मान्यता है कि अमुक एक साधन को बचा एक दफा खराब तौर पर अथवा अयोग्य तौर पर काम में लावें तो उस साधन को सच्चे उपयोग की तरफ झुका देना चाहिये। उसको साधन के सच्चे उपयोग का लाभ देना बड़ा मुश्किल है अथवा अधिक कठिन है इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि मोन्टीसोरी पद्धति में सर्जन शक्ति और कल्पना शक्ति के विकाश को अवकाश ही नहीं है। अक्सर ऐसा कहा जाता है कि बच्चा जब किसी भी साधन का दुरुपयोग करता है तब यह बात ढूंढ निकालनी चाहिये कि उस वक्त उस दुरुपयोग के पीछे बच्चे में विकाश की कौनसी वृत्ति है। बालक की जो सर्जन शक्ति अथवा कल्पना शक्ति मोन्टीसोरी पद्धति के साधन के दुरुपयोग द्वारा व्यक्त होती मालूम होती है उस सर्जन शक्ति और कल्पना शक्ति का रूप मालूम कर लेना चाहिये और उससे तृप्ति, वेग और विकाश जो होता है उसी के अनुसार साधन बच्चे को देना चाहिये और यदि वह मोन्टीसोरी के साधन का सच्चा उपयोग न कर सकता हो तो उससे वे साधन ले लेने चाहिये। मोन्टीसोरी पद्धति के साधन बच्चों का अनेक देशी विकाश सिद्ध करने का दावा नहीं करते हैं। बालजीवन के विकाश में जो अगत्य की वस्तुएं हैं और जो वस्तुएं सिद्ध करने के लिये साधनों की पूरेपूरी कठिनता थी उन्हीं साधनों को डॉ० मोन्टीसोरी ने मुख्यतः पहिले ही पहल रचे हैं। अभी नये साधनों के लिये अवकाश काफी है और इस विशिष्ट साधनों द्वारा दूसरी वृत्तियों की तृप्ति देने के लिये नये २ साधन ढूंढ निकालने की जरूरत है इसी तरह साधनों में बढ़ोतरी हो सकती है और मूल साधनों का दुरुपयोग रुक सकता है।

इस पद्धति के साधन क्रमिक हैं। किस क्रम से और किस समय साधन बच्चे के पास रखना आदि बातों का निर्णय किया गया है तथा किस तरह साधन बच्चों के समक्ष रखना आदि के लिये दिशा बताई गई है। किस क्रम से साधन रखना आदि के विषय में अन्यत्र कहा जायगा। यहां पर यह नोट करने की खास आवश्यक्ता है कि साधनों का जो क्रम रचा गया है वह लम्बे समय के अनुभव और आविष्कार का परिणाम है तो भी इस क्रम के आधिन रहने का कोई खास कारण नहीं है। जहां तक यह क्रम बालमानस के विकास के संमत

रहता है तब तक यह क्रम चलता है। बच्चा स्वयम् हमको बता देगा कि रखा हुआ क्रम यथार्थ है या नहीं। अबतक के आविष्कार से सामान्यतौर से बच्चे का विकाश कौनसे क्रम से होता है वह निश्चित हो चुका है, और उसके आधार पर बालविकाश के साधनों को काम में लाने का क्रम भी निश्चित हो गया है। इसलिये इस क्रम को आविष्कार के तौर पर किसी भी स्थान पर काम में लाने से सिद्धान्त की हानि नहीं होती है, परन्तु यह समझ लेने का है कि यह क्रम किसी भी तरह का अभ्यास नहीं है अथवा कायदे की रचना नहीं है। एक बाद एक विकाश की स्वाभाविक भूमिका पर चढ़ने के लिये जिन सिढ़ियां की जरूरत है वे सिढ़ियों के रूप में साधन का क्रम है और यह क्रम कायदों से जाना जा सकता है। अमुक कचावाले बच्चे का विकाश अब किस सीढ़ी से शुरू करना और उसके लिये उसके पास कौनसा साधन रखना आदि।

बच्चों के सामने साधन किस तरह रखना आदि के विषय में विस्तार से कहने का यह स्थान नहीं है यहां पर इसके विषय में थोड़ी सा विचार किया गया है। बच्चे की मानसिक उम्र ध्यान में लेकर उसके अनुकूल साधन उसके पास काम में लाने को रखने चाहिये। या तो बच्चा साधनों का उपयोग ही नहीं करेगा अथवा साधनों का यथार्थ उपयोग कर थोड़ी ही देर में साधन छोड़ देगा अथवा उन साधनों पर तल्लीन होकर उन पर पुनरावर्तन करता रहेगा। यदि बच्चा साधनों को काम में ही न लें तो समझना चाहिये कि या तो बालक की उम्र साधन के लिये योग्य नहीं है अथवा बच्चा उनका उपयोग नहीं जानता है, अथवा बच्चे की उम्र अधिक हो जाने से वह साधन में आनन्द नहीं मानता है अथवा बच्चे के पास रखा हुआ साधन ठीक नहीं है। यदि बच्चा साधन के लिये योग्य उम्र का न मालूम हो तो उसकी उम्र के लायक दूसरा साधन रखना पड़ता है। यदि ऐसा मालूम हो कि वह उपयोग नहीं समझता है तो उसको उपयोग समझाना पड़ता है। यदि ऐसा मालूम हो कि उसकी उम्र बढ़ गई है तो बड़ी उम्र के बालकों के योग्य साधन देने पड़ते हैं और यदि ऐसा मालूम हो कि साधन ही ठीक नहीं है तो उसको दूर करना पड़ता है। कभी २ तो बच्चा शारीरिक अस्वास्थय की वजह से साधन का उपयोग नहीं करता है जब ऐसी स्थिति मालूम हो तब बच्चे को डाक्टरी मदद देने की आवश्यक्ता होती

है। क्रम में क्रम की बहार, योग्य उम्र अथवा अयोग्य उम्र में यदि बालक साधन काम में लाने में तल्लीनता का अनुभव करें और उस पर पुनरावर्तन किया ही करे तो उसमें किसी भी तरह की रोक नहीं करनी चाहिये। किसी भी समय बच्चे को उत्तेजित नहीं करना चाहिये।

साधन रखने के समय में यह एक बात भी ध्यान रखने की है कि प्रत्येक साधन को काम मे लाने के लिये बच्चे के मानस की निश्चित उम्र में योग्य समय आता ही है। इस योग्य समय साधन नहीं रखा जाय और बच्चा उसका उपयोग न करे तो इन साधनों से मिलते लाभों में से बच्चा जीवनभर वंचित रहता है। अमुक समय ही महत्व का है वे उस समय के जाने के साथ ही बिन उपयोगी हो जाते हैं इसलिये साधन रखने की उम्र का खास विचार शिक्षक के समीप रहने की जरूरत है। अमुक शक्तियों का अमुक विकाश समय उत्तम में उत्तम होता है यह उत्तम में उत्तम समय निरर्थक जाय तो फिर विकाश आधा, बेसूर और कम होता ही जाता है। साधन रखने का समय निश्चित न हो सके परन्तु शिक्षक उसको ढूंढ़ सकता है यह विषय अनुभव और आविष्कार का है।

साधन के लिये जब अधिक बातें ध्यान में रखने की हैं तब एक दो बातें भी ध्यान में रखने जैसी हैं। मोन्टीसोरी शाला में साधन के व्यवस्था का विचार भी अगत्य का है वह श्रेणीवार, क्रमवार साधन को बराबर रखने की व्यवस्था को पोषण देता है और काम करते वक्त और काम करने के अन्त में वापिस व्यवस्थित साधन जमाने के लिये शिक्षक को सरलता हो जाती है। फिर एक बात यह है कि शिक्षक को बालक बनकर सब साधन स्वयम् काम में लाकर देखने की जरूरत है। सिर्फ साधनों का परिचय काफी नहीं है उनको काम में लाने का ज्ञान भी काफी नहीं है। शिक्षक को स्वयं प्रत्येक साधन बालक के सदृश काम में लेना चाहिये और उसको बच्चे की गति और वृति से काम में लाकर देखना चाहिये। एक ही दफा नहीं परन्तु बार २ दुहराना भी नहीं भूलना चाहिये। जब शिक्षक ऐसा करेगा तब उसको बच्चे की असली दृष्टि प्राप्त होगी तब ही साधारण दिखनेवाली चीजों में बच्चे को कितना अधिक आनन्द आता है उसकी कल्पना उसको अच्छी तरह आ सकेगी।

अनुवादक— देवी शेष मग्ने।

दूसर समाजों की प्रगति

'महावीर' पोरवाल समाज के लिये प्रकाशित होता है। दूसरे समाज क्या कर रहे हैं, वे किस कदर प्रगति पन्थ में अग्रसर हो रहे हैं, यह भी जान लेना उसके लिये आवश्यक है। ओसवाल समाज की जाग्रति को देख कर, उसके प्रथम सम्मेलन के होने बाद ही, पोरवाल युवकों ने अ० भा० पो० म० सम्मेलन की प्रवृत्ति उठाई थी। संसार में एक को कर्तव्य परायण होता देख कार्य में लगना या दुराचरण के पंथ में प्रवृत्ति करता देख दुराचरण की ओर आकर्षित होना मनुष्य के लिये आसान और स्वाभाविक बात है। ओसवाल समाज ने अपने दो सम्मेलन कर दिखाये। जिसके प्रत्यक्ष फलस्वरूप 'ओसवाल सुधारक' पाक्षिक पत्र का प्रकाशन होने लग गया है। भिन्न २ प्रान्तों में सुधारक गण सम्मेलन के सन्देश या आदेश को घर २ पहुंचाने का पुण्य प्रयास भी कर रहे हैं।

युवक वर्ग ने मिल कर 'अखिल भारतीय ओसवाल युवक परिषद् भी कायम की है। ओसवाल युवकों का समाज—सुधार सम्बंधी प्रयत्न भी सर्वथा सराहनीय है।

सब से अधिक महत्व पूर्ण एवं जाति हितकारक प्रवृत्ति 'ओसवाल जाति का इतिहास' के प्रकाशित होने की है। यह इतिहास प्रकाशित हो चुका है, लेकिन हमारे पढ़ने में अभी तक नहीं आया। आज हम उसके गुण दोषों के विवेचन को लिखना नहीं चाहते न हम बिना उसको पढ़े वैसा कर ही सकते हैं। हम केवल 'महावीर' के प्रवीण पाठक यानी हमारे पोरवाल समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं। जातीय इतिहास की आज कैसी आवश्यकता है यह बात नवीनता से लिखने की जरूरत नहीं है इसके लिये हम इसी अंक में प्रकाशित "जातीय उत्थान और इतिहास" शीर्षक लेख की ओर पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं। पोरवाल समाज, यदि

वह निश्चय कर ले तो, अपना 'अप-टु-डेट' (Up to date) और प्रमाण भूत इतिहास तैयार करा सकता है। इस महाभारत कार्य के करने के लिये विपुल द्रव्य की आवश्यकता तो अनिवार्य है ही, किन्तु उसके लिये पुरुषार्थ भी वैसा ही प्रबल होना चाहिये। हमारा खयाल ही नहीं बल्कि दृढ़ विश्वास है कि पोरवाल-समाज अपनी इतिहास सांगोपांग स्वरूप में तैयार करा सकता है। आवश्यकता है केवल निश्चय या संकल्प की। सो संकल्प तो सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर ही किया जा चुका है। अब तो सिर्फ उसको कार्य रूप में परिणत करने की आवश्यकता है। हम आशा करते हैं कि अ० भा० पो० म० सम्मेलन की कार्य कारिणी समिति के समझदार एवं जाति हितैषी सदस्य गण अपने कर्तव्य का पालन कर जाति सेवा के महान श्रेय के भागी होंगे।

'इतिहास प्रेमी'

साहित्य-समालोचना

लेखक—'समालोचक'

नम्र निवेदनः—जयपुर के समस्त ओसवाल समाज की सेवा में सेठ चांदमलजी कोठारी ने विधवा-विवाह के प्रश्न पर सम्मतियें एकत्रित करने व इस विषय में लोकमत जाग्रत करने के लिये यह छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की है। आधे हिस्से में लेखक ने अपनी दलीलें सामान्य भाषा में और बाकी के आधे हिस्से में विधवा विवाह के प्रश्न पर वेदों और शास्त्रों के स्पष्ट प्रमाण दिये हैं। लेखक का प्रयास समयानुसार एवं समाज के लिये उपकारक है। आशा है जयपुरस्थ समाज राजपूताने में इस कार्य में अग्रसर होकर श्रेय भागी होगा। हम श्रीयुत कोठारीजी के इस प्रयास के लिये धन्यवाद देते है।

जातीय उत्थान और इतिहास

लेखक—

भीमाशंकर शर्मा, वकील, सिरोही

"The love of history seems inseparable from human nature because it seems inseparable from self-love."

'Lord Boling broke.'

"जिस जाति का अपना कोई इतिहास नहीं है, वह संसार में बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकती।"

'अज्ञात'

"किस्सये अज़मते माज़ी को न मुहमिल समझो;
कौमें जाग उठती हैं अक्सर इन अफ़सानों से"

'रवाँ'

उन्नति प्राप्त सभ्य संसार की दृष्टि में भारतवर्ष क्यों हेय समझा जाता है? अभ्युदय के मार्ग में आगे बढ़ी हुई जातियों में भारतीय क्यों पीछे (Back ward) गिने जाते हैं? भारतियों में किस बात की कमी है या वे किस विषय में दूसरी जातियों के मुक़ाबिले में कम जानकारी रखते हैं? संसार में आज दो विषयों के विशेषज्ञों की बोल बाला है। विज्ञान (Science) और राजनीति (Politicks) जिसमें कानून (Law) भी शामिल है। इन दो विषयों के जानने

वाले आज संसार पर अधिकार जमाये हुए हैं। क्या इनके विशेषज्ञ विद्वान् (Expert) भारत में पैदा नहीं हुए हैं ? विज्ञानाचार्य सर जगदीशचन्द्र बसु स्व० पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री० विट्ठलभाई पटेल एवं चित्तरंजनदास के मुकाबिले में शायद ही संसार में उनकी जोड़ी मिलेगी फिर भी सभ्य संसार की दृष्टि में भारतवर्ष असभ्य समझा जाता है, इसका क्या कारण है ? इसका उत्तर सी० एन० के. एय्यर नामक भारतीय विद्वान् ने अपने "श्रीमद् शंकराचार्य उनका जीवन और समय" नामक ग्रन्थ की भूमिका में निम्न प्रकार दिया है—

"भारतवर्ष आज संसार की दृष्टि में इसलिये हेय है कि भारतीय इतिहास के वीरों की शौर्य कथाओं से संसार अनभिज्ञ है। यह बात नहीं है कि भारतीय वीरों की कथाएं संसार की कहने के लिये नहीं हैं या वे जगत् साहित्य के मुकाबिले में कम महत्व की हैं।" *

* "India suffers to-day in the estimation of the world more through that worlds ignorance of the achievements of the heroes of Indian history than through the absence or insignificance of such achievements."

Shree Shankaracharya,
his Life and Times; P. IV.,
By C. N. K. Aiyar.

भारतवर्ष में 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे आदर्श इतिहास-ग्रन्थ आर्य जाति के सद्भाग्य से विद्यमान हैं। उनके प्रताप से आर्यगण सभ्य संसार के सामने अपना मस्तक गौरव से ऊंचा किये हुए हैं। स्व० सर रमेशचन्द्रदत्त ने अपने अमर ग्रन्थ Hindu Superiority में लिखा है कि "कितने हजार वर्षों से यह पुण्य कथा (रामायण और महाभारत) भारतवर्ष में ध्वनित और प्रतिध्वनित हो रही है। सुन्दर बंगदेश में, तुषार-पूर्ण पर्वत-वेष्टित कातर में, वीरप्रसू राजस्थान और महाराष्ट्र भूमि में, सागर प्रक्षालित कर्नाटक और द्रविड़ में, अत्यन्त फलद्रूप पंचनद शोभित पांचाल (पंजाब) प्रदेश में कितने हजार वर्षों से यह गीत ध्वनित हो रहा है। हम लोग यह शिक्षा कभी न भूलें। गौरव के दिनों में इन्हीं अनन्त गीतों ने हमारे पूर्वजों को प्रोत्साहित किया था। हस्तिनापुर,

अयोध्या, मिथिला, काशी, मगध और उज्जयिनी प्रभृति देशों को इन्हीं गीतों ने वीरत्व और यश से प्लावित किया था। दुर्दिनों में इन्हीं गीतों को गाकर विमलशाह, वस्तुपाल तेजपाल, समरसिंह, संग्रामसिंह और प्रतापसिंह ने धर्म व जाति की रक्षा के लिये हृदय का शोणित दान किया था। आज हम दीन दुर्बल हिन्दुओं के आश्वासन का स्थान यही पूर्व गीत मात्र है। ईश्वर से प्रार्थना है कि विपद में, विषाद में, दुर्बलता में हम लोग यह पूर्व कथा न भूलें; जब तक जातीय जीवन रहे हृदय-तन्त्री इन्हीं गीतों के साथ गुंजारती रहे।"

परन्तु दुर्भाग्य से रामायण महाभारत के पूर्व व बाद का इतिहास जैसा चाहिये वैसा उपलब्ध नहीं है। कुछ था सो आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया। आज इतिहास का वह पठन पाठन नहीं रहा। इस कारण हम संसार की दृष्टि में भीरु, कायर और अकर्मण्य समझे जाते हैं और आश्चर्य तो यह है कि हम खुद भी अपने को ऐसा ही समझने लगे हैं। क्या वास्तव में हम हमेशा से दीन दुर्बल और शक्तिहीन रहे हैं? क्या हमारे में कभी भी पौरुष नहीं था? क्या हमारी तरह हमारे पूर्वज भी भेड़ों की तरह चुपचाप शत्रुओं को आत्म-समर्पण कर देनेवाले थे? एक ऐतिहासिक का कथन बहुत ठीक है कि "यदि किसी राष्ट्र (Nation) को सदैव अधःपतित एवं पराधीन बनाये रखना हो, तो सबसे अच्छा उपाय यह है कि उसका इतिहास नष्ट कर दिया जाय।" ठीक यही हाल भारतवर्ष का हुआ है। यहां सब कुछ होने पर भी संसार और भारतीयों की दृष्टि में कुछ नहीं है। भारतीय विद्यार्थी नेपोलियन बोनापार्ट, मार्टिन ल्यूथर, जोन ऑफ आर्क, क्विन इलिजाबेथ आदि के सम्बन्ध में जितना ज्ञान रखते हैं, उसके दशवें हिस्से का भी वे महाराना सांगा, पृथ्वीराज चौहान, राजा मानसिंह, सम्राट् चन्द्रगुप्त, राष्ट्रकूटपति अमोघवर्ष, सम्राट् खारवेल, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द और वीराङ्गना लक्ष्मीबाई के निस्बत ज्ञान नहीं रखते। इतिहास और पुरातत्त्व की जो प्रगति आखीर के सौ वर्षों में हुई है, वह पहले नहीं थी। जब तक भारतीयों ने अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचाना था, तब तक संसार में भी हमारा कोई स्थान निर्णित नहीं था। स्व० बंकिमचन्द्र ने बहुत ही अच्छा कहा है कि "जो कोई अपने को महापुरुष कह कर परिचय नहीं देता, उसे कोई आदमियों में ही नहीं गिनता। कब किस जाति ने दूसरों

के गुणगान गाये हैं ? रोमन लोगों के युद्ध पांडित्य का प्रमाण रोमनों का लिखा हुआ इतिहास है। ग्रीक लोगों के वीर होने का परिचय भी उन्हीं के लिखे हुए इतिहास से मिलता है। मुसलमानों के बहादुर होने की बात भी उन्हीं की लिखी हुई तवारिखों से जान पड़ती है। यूरोप की वीरता, धीरता एवं बुद्धिमता का परिचय यूरोपियन लेखकों ने ही हम तक पहुंचाया है। हमने अपनी वीरता, धीरता, सभ्यता, संस्कृति, शिल्पकला और साहित्य का कोई इतिहास निर्माण ही नहीं किया, इसीलिये हमारे पराक्रमी पूर्वजों की धवल कीर्ति को अथवा हमारे चरित्र-गौरव को कोई नहीं मानता; क्योंकि हमारा इस बात का कोई गवाह नहीं है।"

आज तो वह जमाना है कि संसार की घुड़दौड़ में सब के साथ रहने के लिये अपना पूर्व इतिहास नहीं है, तो भी उसे उज्ज्वल स्वरूप में तैयार कर संसार के सामने रखते हैं। कुंजड़ों की औलाद भी गर्व से कहती है कि हमारे बाप दादे बड़े बांके रणबीर हो गये हैं। यह बात तो अदालत के मामले मुकदमे में झूठे गवाह पेश करने जैसी हुई, ऐसा कोई सरल चित्त पाठक प्रश्न कर बैठेगा तो इसका जवाब 'हां' के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जिन जातियों का पूर्व इतिहास कुछ भी नहीं हैं वे उसका निर्माण कर रही हैं और हमारा सब कुछ होते हुए भी हम उसकी ओर उदासीन होकर बैठे हुए हैं। जैसा कि महाराष्ट्रीय विद्वान् दत्तात्रेय कालेलकर का कहना है भारतीय समाज की खूबी इतिहास लिखने की अपेक्षा उसको जीवित रखने अर्थात् जीवन में उसे चरितार्थ कर दिखाने में ही थी और जब तक हमारी प्राचीन परम्परा टूटी नहीं थी तब तक हमारा इतिहास हमारे जीवन में जीवित था। परन्तु जब से हमने अपने देवता तुल्य पूर्वजों के मार्ग पर चलना छोड़ा है और केवल लकीर के फकीर बनकर बैठे हैं, तभी से हमको अपने गौरवपूर्ण इतिहास की आवश्यकता भी मालूम होने लगी है। आज हम से हमारी संतान सदाचार का कोई सबक नहीं सीख सकती, हमारा बहुत गहरा पतन हुआ है। इतना गहरा कि कुत्ते हमारी हालत पर रो सकते हैं, गधे हँस सकते हैं, व शूकर मुंह चिढ़ा सकते हैं।

इतिहास का महत्व क्या है? यह बात अभी तक हम लोग बराबर नहीं समझे हैं। इतिहास साहस को बढ़ाने वाला, स्फूर्ति देनेवाला कर्तव्य बताने

वाला, दुराचार एवं कुमार्ग से बचानेवाला और आपत्ति में धैर्य बंधाने वाला सच्चा सखा है। वह मनुष्य जो अपने पूर्वजों के सुकृत्यों से परिचित नहीं, अवसर पड़ने पर दुराचार के अंधेरे कूप में गिर सकता है, विश्वासघात और देश व जाति द्रोह कर सकता है किन्तु जो मनुष्य यह जानता है कि मेरे पूर्वजों ने असंख्य द्रव्य के लोभ को ठुकरा कर देशद्रोह अथवा विश्वासघात नहीं किया। शरीर का तुच्छ मोह त्याग कर अपनी आन पर मर मिटे; अनेक प्रलोभनों अथवा दारुण वेदनाओं को सन्मुख देख कर भी कुल में कलंक नहीं लगने दिया—वह कुमार्ग में प्रवेश करते २ भी रुक जायगा। उसके बापदादों के उज्वल चरित्र उसके नेत्रों के सामने नाचने लगेंगे। क्योंकि इतिहास ही संसार में एक ऐसी वस्तु है, जो पतितों को उठा कर उन्नति के उच्चतम शिखर पर बैठा देता है, जो निर्बलों को बलवान, निर्धनों को धनवान, निर्गुणों को गुणवान, भीरुओं को साहसी, कायरों को वीर, कुमार्गरतों को सदाचारी और सोती हुई कौमों को जाग्रत कर देनेवाला है।

इस पर से पाठक समझ गये होंगे कि जातियों के उत्थान में इतिहास कितना महत्त्व पूर्ण हिस्सा रखता है। 'महावीर' के पाठकों अर्थात् भारतीय पोरवाल समाज का ध्यान हम इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं। हमारे सिरोहीनिवासी पोरवाल सुधारकों ने अखिल भारतवर्षीय पोरवालों का संगठन करने के लिये सम्मेलन तो कर दिया, उसके सिद्धान्तों के प्रचार के लिये 'महावीर' मासिक पत्र भी निकाला अब उनको चाहिये कि वे पोरवाल जाति का प्रामाणिक एवं विस्तारित इतिहास भी तैयार कर स्वजाति के चरणों में धरें। पोरवालों का प्राचीन इतिहास सद्भाग्य से बड़ा ही उज्ज्वल और गौरवपूर्ण है। लेकिन यह कार्य इतना आसान नहीं है और न एक दो व्यक्तियों से या पांच पचास रुपयों से ही पार पड़नेवाला है। इसमें अनेक व्यक्तियों के पुरुषार्थ और हजारों रुपयों के व्यय की आवश्यकता है। राजनीति निपुण, रणवीर एवं दानवीर वस्तुपाल तेजपाल के चरित्र की प्रशंसा करनेवाले अर्थात् उनके चरित्र को अपना जीवन आदर्श माननेवाले पोरवाल धनाढ्यों के लिये क्या यह बात असंभवित या अशक्य है? क्या इस जाति में धन की कमी है? आज पोरवाल युवकों की क्या दशा है? पोरवाल समाज में आज कौनसी कुरूतियें

दृष्टिगोचर नहीं हो रही है ? उसका एक मात्र उपाय इस जाति के पूर्वजों के गौरवपूर्ण इतिहास को सामने रखना ही है।

यहां यदि कोई शंका करे कि सिंहों को अपने पूर्वजों की वीरता के गुण गान सुनाने की क्या आवश्यकता है,—वे तो स्वयम् ही उनके अनुरूप होते हैं तो उसका जवाब यह है कि एक सिंह-शिशु जो भाग्य वश भेड़ों में मिल गया है और अपने वास्तविक स्वरूप को भूल बैठा है, उसे उसके असली रूप का बोध कराने के लिये सिंहों का प्रतिबिम्ब दिखाना ही होगा, कानों में केसरी गर्जना पहुंचानी ही होगी, तभी वह अपना वास्तविक स्वरूप समझ सकेगा। प्रभु महावीर के उपासक जो आज भ्रम-वश कायरता का जामा पहने हुए हैं, उनसे वह अनर्थकारी जामा बलात् छीनना होगा। इसका केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि उनके पूर्वजों के आन मान पर मर मिटनेवाले वीर-रस-पूर्ण कारनामें सुनाये जायें, जिनको सुनते ही वे उन्मत्त होकर नाच उठें और गरज कर बोल उठें कि:—

हम जाग उठे सब समझ गये,
अब करके कुछ दिखला देंगे।
हां विश्व-गगन में अपने को,
फिर एक बार चमका देंगे॥

अज्ञात।*

---

* इस लेख के तैयार करने में मुझको श्री० अयोध्याप्रसाद गोयलीय लिखित "मौर्य साम्राज्य के जैनवीर" नामक पुस्तक की भूमिका से बहुत कुछ सहायता मिली है, एतदर्थ मैं लेखक महोदय को धन्यवाद देता हूं।

—लेखक

पौरवाल ज्ञाति इतिहास के मुख्य २ विषय

नोट—(हरएक विषय पर एक स्वतंत्र अध्याय होगा जो महाशय निम्न-लिखित विषयों पर लेख लिख कर भेजेंगे वे सहर्ष स्वीकार किये जायेंगे और यदि इतिहास में देने योग्य हुए तो उसमें स्थान दिया जायगा। हरएक लेख कम से कम आठ फुलिसकेप पेपर के एक तरफ लिखे होने चाहिये।

(१) पूर्व की तरफ से (श्रीमालनगर) की ओर दश हजार योद्धाओं का आना और आबू की तलहटी में बसनेवाली पद्मावती नगरी के उद्यान में ठहरना।

(२) आचार्य स्वयंभूसूरी का उपदेश और जैनधर्म की स्वीकारता।

(३) जैनधर्म स्वीकार करने के बाद प्रागवट् (पौरवाल) ज्ञाति नाम रखने का कारण।

(४) पौरवाल ज्ञाति के उत्पत्ति के शिलालेख कावदरा आदि के।

(५) पौरवाल ज्ञाति के मुख्य २ गोत्र व उनका इतिहास।

(६) पौरवाल ज्ञाति का एक विशाल वटवृक्ष में पल्लवित होना।

(७) पौरवाल ज्ञाति की धार्म्मिकता।

(८) पौरवाल ज्ञाति के जैनाचार्य और अन्य।

(९) अन्य जैनाचार्यों का संक्षिप्त विवर्ण जिन्होंने पौरवाल ज्ञाति को निर्माण करने में कार्य किया।

(१०) पौरवाल ज्ञाति के कुशल विद्वान् व उनकी कृतिएं।

(११) पौरवाल ज्ञाति के शिल्पकार और उनका संक्षिप्त वर्णन (प्राचीन)।

(१२) पौरवालों पर जैनाचार्यों का प्रभाव।

(१३) पौरवालों की सच्ची स्वामीवत्सलयता और परस्पर समानता

(१४) चन्द्रावती व गुजरात के राज्य शासन में पौरवालों का प्रमुख हाथ।

(१५) पौरवाल ज्ञाति के सात दुर्ग और उनका दृढ़ता से पालन।

(१६) भारत में मन्दिर निर्माण में पौरवालों की असीम उदारता।

(१७) विमलवसिह (विमलशाह के जैन मन्दिर)

(१८) वस्तुपाल तेजपाल के जैन मन्दिर व अन्य मन्दिर, मसजिद, वैद्यशालाएं आदि ।

(१९) वस्तुपाल तेजपाल की वजह से सब महाजन ज्ञातियों में देशों के भेद ।

(२०) वस्तुपाल तेजपाल के दान की उदारता हिमालय से कन्याकुमारी तक ।

(२१) धनाशाह (नांदिया निवासी) का राणकपुर का जैन मन्दिर व उसका इतिहास ।

(२२) प्राग्वट् ज्ञातीय संघवी सहसा सालिग का बना हुआ अचलगढ़ का चौमुखीजी का जैन मन्दिर व उसका संक्षिप्त वर्णन ।

(२३) सिरोही का चतुर्थमुखाय ऋषभदेव का जैन मन्दिर और उसके निर्माता ।

(२४) पौरवाल समाज की प्रगति और खंभात, बीलीमोरा, भरुच और सूरत के बन्दरों की उन्नति ।

(२५) चन्द्रावती में पौरवाल की संघ व्यवस्था ।

(२६) पौरवाल समाज का संसार व्यापी व्यापार । (प्राचीन)

(२७) पौरवाल ज्ञाति के स्वतंत्र जहाज उनका निर्माण व व्यवस्था ।

(२८) पौरवाल ज्ञाति की व्यापार में प्रतिस्पर्धा होने पर भी उन्नति के शिखर पर । (प्राचीन)

(२९) पौरवाल ज्ञाति के भारत भर में सामान तैयार करने के कारखाने । (प्राचीन)

(३०) पौरवाल ज्ञाति के वाणिज्य व्यवसाय के स्वतंत्र विद्यालय । (प्राचीन)

(३१) पौरवाल ज्ञाति की स्वतंत्रता । (प्राचीन)

(३२) भारत के हस्तलिखित भंडारों को स्थापित करने में पौरवालों का हाथ ।

(३३) पौरवाल ज्ञाति का प्राचीन वैभव ।
(३४) पौरवाल ज्ञाति की राजनीतिज्ञता ।
(३५) पौरवाल ज्ञाति के श्रेष्ठ वीरों के जीवन चरित्र । (प्राचीन)
(३६) पौरवाल, ओसवाल, श्रीमाल और अन्य ज्ञातियों में रोटी बेटी व्यवहार । (प्राचीन)
(३७) पौरवाल समाज की दूसरे समाजों पर उदारता ।
(३८) अम्बादेवी और पौरवाल समाज ।
(३९) भिन्न २ पेटा ज्ञातिएं कैसे हुई ?
(४०) भिन्न २ पेटा ज्ञातियों के गौत्र और उनका इतिहास ।
(४१) पद्मावती पौरवाल ।
(४२) बीसा शुद्ध पौरवाल ।
(४३) दशा पौरवाल ।
(४४) अट्ठाबीसा पौरवाल ।
(४५) गंगराड़े पौरवाल ।
(४६) झांगड़ा पौरवाल ।
(४७) नेता पौरवाल ।
(४८) कपोल पौरवाल ।
(४९) सोरठिया पौरवाल ।
(५०) पौरवाल ज्ञाति के महामन्त्री मुजाल की फूफी का विवाह गुजरात के सोलकी वंशीय सम्राट् कुमारपाल (प्राचीन) के साथ ।

आधुनिक पौरवाल ज्ञाति के पतन का इतिहास व उसको सुधारने की योजनाएं

(५१) पौरवाल ज्ञाति का पतन ।
(५२) पौरवाल ज्ञाति का छोटे २ टुकड़ों में विभाजित हो जाना ।
(५३) गांव २ और परगने २ में विवाह संबन्ध की वाड़ाबन्दी हो जाना ।
(५४) पौरवाल ज्ञाति की अवनति के खास कारण और उनका निदान ।
(५५) सब महाजन ज्ञातियों की प्राचीन एकता और एक ही वंशवृक्ष से निकलना और बाद में अलग २ हो जाना ।

(५६) वर्त्तमान में व्यायाम मन्दिरों की आवश्यकता और उनको निर्माण करना ।

(५७) विद्या प्रचार के खास साधन प्रस्तुत करने की आवश्यकता ।

(५८) उन्नति के भिन्न २ साधनों का जुटाना ।

(५९) समाज और राष्ट्र उपयोगी कार्य में धन का व्यय करना ।

(६०) समानधर्म और समानगुणवाली ज्ञातियों में बिना भेद भाव के विवाह की छूट ।

(६१) जैन धर्मानुसार ज्ञाति भेदों की अस्थिरता ।

(६२) भारत में एक विशाल वाणिज्य मन्दिर स्थापित करना ।

(६३) भावी पौरवाल युवक व युवतियों का संसार प्रवेश, व्यापार, देशसेवा आदि का विस्तृत कार्यक्रम ।

(६४) जापान में पौरवाल बोर्डिङ्ग हाऊस को स्थापित करने की आवश्यकता ।

दूसरा भाग

(१) पौरवाल समाज के मन्दिर मय चित्रों व संक्षिप्त इतिहास के ।

(२) प्रसिद्ध २ शिलालेख, परवाने व ताम्रपत्र ।

(३) पौरवालों की बस्ती के गांव, शहर, घर संख्या और मनुष्य संख्या ।

(४) पौरवाल समाज के व्यक्तियों के चित्र मय उनके खानदान के संक्षेप इतिहास सहित ।

(५) पौरवाल युवकों को आह्वाहन ।

(६) भारतभर के पौरवालों का बस्ती पत्र ।

(७) ज्ञाति को उन्नति पथ पर ले जाने को एक सबल संगठन ।

सम्पादक—

पौरवाल हिस्ट्री पब्लीशिङ्ग हाऊस,

सिरोही, (राजपूताना).

॥ ॐ ॥

कालूशाह-यशलहा

और

दिल्ली पति अलाउद्दीन खिलजी का युद्ध

(लेखक शिवनारायण यशलहा-इन्दौर)

साजि चतुरंग सैन्य वीर सब तुरंग चढ़ि,
वीर "कालूशाह" जंग जीतन चलत हैं ।
"शिव" यों कहत नाद दुंदुभ नगारन के,
नदी नद सब नीर रेत रुकत हैं ॥ १ ॥
वीरन के एक एक ठेकठेक चमकन में,
गगन के नापते तेग चमकत हैं ।
धरनी ते धूरि उड़त सूरज लौं पहौंच जात,
चाकन के हाथन ते जलागार हरकत हैं ॥ २ ॥
झण्डे फहराने चहराने कपट हाथिन के,
चराने पकाने ढाप छापा देत देवन के ।
गिरिधर थर्रावे ग्राम नगर गिराने सुनि,
बाजत रणभेरी कालूशाह मंत्रिवर के ॥ ३ ॥
दामिनी दमक देखि खुले कर वीरन के,
भाले चलत जिमि चमक चिनगारी के ।
देखि देखि यवनन की हरबन के हूक उठत,
फाटत कलेजा हाल देखि भू भगाड़ी के ॥ ४ ॥
चालत है खड्ग और कमान तीर बानन के,
होती कठिनाई मुरचान हू की आड़ में ।
कालूशाह ताही समय वीर वेगि हल्ला कियो,
कायर के कलेजा कंपे छिपे पहाड़ खाड़ में ॥ ५ ॥
मूंछन पे ताव देते शिवजी का नाम लेते,

अरि मुख घाव देते कूदे यवन दल में ।
"शिव" यों भनत तेरी कीरती कहां लों कहों,
काठ की कलम जिमि तृण अगाध जल में ॥ ६ ॥
"काल्हू" का हल्ला सुनि यवन सैन्य ठट्ठ टूटे,
गजन के समूह काल्हूशाह दलन छूटे हैं ।
इते काल्हूशाह जू के छूटे सिंह सैन्य औ,
विदारे भाल कुम्भन के चिंघरत भागे हैं ॥ ७ ॥
फौजें सब भागीं मुगल औ पठानन की,
मीर औ अमीर उमराव सब मारे हैं ।
"शिव" यो भनत जापे वार काल्हूशाह करत,
सम्भरत नहीं प्राण लाख हूं सम्भारे हैं ॥ ८ ॥
याही विधि जीत काल्हूशाह यवन भाग परी,
"मीर" नहिं दीन्हें मान दिल्ली के द्वारे हैं ।
ताहि अलादीन सुनि दांतन ते होठ चावि,
मनकूं मसोस निज खेमा उपारे हैं ॥ ९ ॥
याही विधि यवनन को क्षण में संहार करि,
हर्षित औ उल्लसित "रणथंभपुर" सिधारे हैं ।
जाइ निज राज हम्मीर को नवाइ माथ,
यवनन के झंडे मुकुट चरणन में डारे हैं ॥ १० ॥
ऐसे हू ऐसे कितनेक औ अनेक वीर,
प्राग्वाट ज्ञाति तूने भूतल पे जाये हैं ।
तिनके प्रताप औ अगाध शूरवीर तातें,
फारबस औ टाड तिनके सहस गुन गाये हैं ॥ ११ ॥
हाय हाय ताही की आजु गति कैसी भई,
"पौरवाल" नाम धरि रहते शरमाये हैं ।
"शिव" अजहूं सीखमानि ज्ञाति में ऐक्य आनि,
वीर औ सुधीर बनि जग में जस पाये हैं ॥ १२ ॥

॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥ ॥ श्री ॥

कपड़े रंगने की विधि

कई परीक्षित रंगने की रीतियां यहां पर दी जायंगी। रंग बनाने के लिये जिन पदार्थों का परिमाण यहां पर दिया गया है, उससे एक साड़ी (१०-११ हाथ लम्बी ४४-४६ इञ्च चोड़ी) अच्छी तरह रंगी जा सकेगी। यदि कपड़ा या सूत कम या ज्यादा हो तो उसी के अनुसार रंग का परिमाण भी कम या ज्यादा कर लेना आवश्यक है।

रंगने के पहले यहां पर दिये हुए नियमों को अच्छी तरह समझ लेना उचित है। नये सीखनेवालों को पहले पुराने कपड़ों के टुकड़ों को रंग कर सीखना उचित है। इन विधियों में देशी और अंग्रेजी दोनों तौल दी गयी है। अपनी अपनी इच्छानुसार दोनों में से किसी एक तौल का व्यवहार किया जा सकता है।

(१) मटीला या गेरुआ पक्काः—

हर्रा चूर्ण आधी छटांक–१ आउन्स; पानी ५ सेर–१ गैलन

आधे घण्टे तक खौला कर सत बना कर गरम सत में आधे घण्टे तक कपड़े को भिगोवें। उसके बाद लाल कसीस आधी छटांक–(१ आउन्स) (पानी ५ सेर–१ गैलन)

इसमें फिर १५ मिनट कपड़े को भिगो कर साफ पानी से धो डालें।

(२) खाकी पक्काः—

हर्रा चूर्ण २ छटांक–४ आउन्स; पानी ५ सेर–१ गैलन

इसको आधे घण्टे तक खौलाकर सत बनावें और उस सत में आधा घण्टा कपड़े को डुबो कर रखें। फिर निचोड़ कर

लाल कसीस १ छटांक–२ आउन्स; गरम पानी ५ सेर–१ गैलन

इसमें कपड़े को आधे घण्टे तक भिगो कर साफ पानी से धो डालें।

(३) गाढ़ा खाकी पक्का:—

हर्रा चूर्ण ४ छटांक—८ आउन्स; गरम पानी ५ सेर—१ गैलन

इनको आध घण्टे तक खोलाकर सत निकालें। इस गरम सत में आध घण्टे तक कपड़े को भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया आधी छटांक—१ आउन्स; गरम पानी ५ सेर—१ गैलन

आध घण्टे तक कपड़े को इसमें डुबोकर साफ पानी से धो डालें।

तूतिया देने से खाकी रंग के साथ थोड़ा लाल आजाता है। तूतिया के साथ थोड़ासा हीराकष (पाव तोला) देने से खाकी रंग बहुत गाढ़ा बन जाता है।

(४) गेरुआ पक्का:—

गरान की छाल आध सेर—१ पाउंड; पानी ५ सेर—१ गैलन

आध घंटे तक पानी में इन छालों को उबालकर उनका सत बना लेवें। इस गरम सत में कपड़ों को आध घंटे भिगो कर निचोड़ डालें।

फिटकरी २ छटांक—४ आउन्स; गरम पानी ५ सेर—१ गैलन

इसमें १५ मिनिट कपड़े को भिगो कर निचोड़ डालें।

सोडा २ छटांक—४ आउन्स; गरम पानी ५ सेर—१ गैलन

आध घण्टे तक कपड़े को इसमें भिगो कर साफ पानी से धो डालें।

(५) बैंगनी रंग पक्का:—

गरान की छाल का चूर्ण आधा सेर—१ पाउण्ड; पानी ५ सेर—१ गैलन

इसको आधे घण्टे तक पानी में उबाल कर सत निकालें और इस गरम सत में आध घण्टे कपड़ों को भिगो कर निचोड़ डालें। यह सत एक बार व्यवहार कर लेने पर भी काम में लाया जा सकता है।

हीराकष पौन छटांक, डेढ़ आउंस; गरम पानी ५ सेर–गैलन

गरम पानी ५ सेर–१ गैलन

१५ मिनट इसमें कपड़ों को भिगो कर निचोड़ डालें। (हीराकष का पानी फिर काम में लाया जा सकता है) इसके बाद कपड़ें को गरान की छाल के सत में फिर १५ मिनट भिगो देवें और निचोड़ कर फिर १५ मिनट हीराकष के पानी में भिगो कर निचोड़ डालें। इस तरह कपड़ों को दो बार रंग कर सोडा २ छटांक–४ आउन्स; गरम पानी ५ सेर–१ गैलन

इस खारे पानी में कपड़ों को आध घण्टे तक भिगो कर साफ पानी से धो डालें। लोहे का पानी हीराकष के बदले गरम पानी में घोल कर व्यवहार करने से पक्का रंग बन जाता है।

(६) बादामी पक्का:—

हीराकष आधी छटांक–१ आउन्स; गरम पानी ५ सेर–१ गैलन

१५ मिनट इसमें कपड़े को भिगो कर निचोड़ डालें।

चूना १ छटांक–२ आउन्स; पानी ५ सेर–१ गैलन

चूने को पानी में छोड़ कर उसे दूध की तरह बना डालें। कपड़े को खोल कर इस चूने के पानी में अच्छी तरह भिगो लेवें। अब इसे निचोड़ कर सुखा लेना चाहिये। कपड़े पर पहिले कच्चे घास का रंग आता है, इसके बाद अच्छी तरह सूखने पर बादामी रंग खिलता है। अब कपड़े को फिर पानी से धो कर सुखा डालें।

इस तरह बादामी रंग को दो या तीन बार कपड़े पर चढ़ाने से बसन्ती रंग आ जायगा, परन्तु कपड़ा कुछ कड़ा पड़ जाता है।

(७) काला पक्का:—

हीराकष का पानी और हर्रा के द्वारा बहुत सहज उपाय से काला रंग रंगा जा सकता है: परन्तु यह रंग पक्का नहीं बनता है। हीराकष की जगह लोहे के पानी से कपड़े रंगने पर अच्छा पक्का रंग कपड़े पर चढ़ाया जा सकता है। हिन्दुस्तान के रंगरेज जिन पुराने नियमों से लोहे का पानी बनाते हैं, वह बहुत अच्छा और सुगम उपाय है। यहां पर उनकी प्रचलित रीति लिखी जाती हैं:—

गुड़ (तम्बाकू का गुड़) १ सेर, पानी १० सेर, लोहे के टूटे-फूटे बर्तन, परेक इत्यादि १ या २ सेर। गुड़ को पानी में घोल कर एक मिट्टी के बर्तन में रखिये। लोहे के टुकड़ों को एक कपड़े में बांध कर इस गुड़ के पानी में भिगो देवें और घड़े को एक पतले कपड़े से ढांक देवें। यदि लोहे पर मोर्चा पड़ गया हो तो उसे गरम करके पीट लेने पर मोर्चा छूट जाता है। पुराने टीन के डिब्बे या कनस्टरों को काट कर छोटे २ टुकड़ों से काम चल सकता है। मोर्चा लगा हुआ लोहा व्यवहार में नहीं लाना चाहिये।

पांच-छः दिन बाद गुड़ सड़ कर सिरका बन जाता है। सिरके में अधिकांश असीतिकाम्ल (Acetic acid) रहता है। इस अम्ल (Acid) और लोहे के रसायनिक संयोग से लोह-असीतेत (Acetate of iron) बनता है। बीच २ में इन्हें एक लकड़ी से अच्छी तरह हिला देना बहुत जरूरी है।

रंगने की रीतिः—

हर्रे का चूर्ण ४ छटांक–८ आउंस; पानी ५ सेर–१ गैलन।

आध घण्टे तक चूर्ण को पानी के साथ उबाल कर सत बना डालें। इस सत में आध घंटे तक कपड़े को भिगो कर निचोड़ डालें। कपड़े को सुखा कर लोहे के पानी से रंगे।

लोहे का पानी ५ सेर–१ गैलन।

इसमें आध घण्टे तक कपड़े को भिगो कर सुखा डालें। एक दिन (२४ घंटे) बाद फिर इसी रीति से हर्रे के सत और लोहे के पानी के द्वारा

कपड़े को रंग कर सुखा डालें। इसी रीति से तीसरी बार भी कपड़े को रंगने से अच्छा काला रंग कपड़े पर आ जायगा। एक ही लोहे का पानी और लोहे का सत तीनों दफे काम में लाया जा सकता है, परंतु प्रत्येक बार थोड़ा २ हर्रे का सत और लोहे का पानी और मिला लेना अच्छा है। हर दफे लोहे के पानी में कपड़े को भिगोने पर उसको अच्छी तरह सुखा लेना आवश्यक है। इससे कपड़े पर का सब असीतिकाम्ल या सिरकम्ल उड़ जाता है और लोहे के साथ हर्रे का कषाय वस्तु (Tannin) मिल कर अच्छा पक्का काला रंग बनता है।

तीन बार इस तरह कपड़े पर काला रंग चढ़ा लेने पर १ या दो दिन में सुखाकर साफ पानी से धो डालें। धोने पर पहिले कुछ काला रंग घुल जाता है, परन्तु इसके बाद अच्छा पक्का काला रंग निकल जाता है।

(८) काला रंग आधा पक्का:—

नीचे के दिये हुए सहज उपाय से बहुत जल्द काला रंग कपड़े पर चढ़ाया जा सकता है, परन्तु यह पक्का नहीं होता और खारे पानी से धोने पर बहुत साफ हो जाता है।

हर्रे का चूर्ण ४ छटांक–८ आउन्स; पानी ५ सेर–१ गैलन।

इसको आध घंटे तक उबाल कर सत निकालें और इस गरम सत में कपड़े को आधे घण्टे तक भिगो कर निचोड़ डालें। कपड़े को धूप में सुखाकर

हीराकष २ छटांक–४ आउन्स; गरम पानी ५ सेर–१ गैलन

इसमें कपड़े को आधे घंटे भिगो कर निचोड़ डालें। जब कपड़ा सूख जावे तो ऊपर के नियमानुसार फिर दो बार रंग चढ़ावें। एक ही हीराकष का पानी और हर्रे का सत प्रत्येक बार काम में लाया जा सकता है, परन्तु कपड़ा भिगोने से पहले थोड़ा नया हीराकष और हर्रे का सत इसमें मिला देना उचित है। रंगने के बाद कपड़े को साफ पानी से धोकर सुखा लेना आवश्यक है।

(९) राख का रंग पक्का:—

हर्रे का चूर्ण १ छटांक–२ आउन्स; पानी ५ सेर–१ गैलन

आध घंटे तक इस चूर्ण को उबाल कर निकालें। इस गरम सत में कपड़े को आधे घण्टे भिगो कर निचोड़ कर धूप में सुखा डालें।

लोहे का पानी १। सेर—पाव गैलन; पानी ३।।। सेर—पौन गैलन

इसमें कपड़े को भिगो कर सुखा डालें। एक दिन बाद कपड़े को साफ पानी से धोना आवश्यक है।

हर्रे का चूर्ण और लोहे के पानी की मात्रा को कम-ज्यादा करके इच्छानुसार कपड़े पर फीका या गाढ़ा रंग चढ़ाया जा सकता है। हर्रे के साथ थोड़ी सी (पाव तोला) गरान की छाल मिला देने से फाख्तई रंग बन जाता है।

(१०) फीका कत्थई पक्काः—

कत्थे का चूर्ण २ छटांक—४ आउन्स; पानी ५ सेर—१ गैलन

इसको आध घंटे तक उबाल कर सत तैयार करें। गरम सत में आध घंटे तक कपड़े को भिगो कर निचोड़ डालें।

लाल कसीस या बाइक्रोमेट आधी छटांक—१ आउन्स; गरम पानी ५ सेर—१ गैलन

इसमें आध घंटे तक कपड़े को भिगो कर साफ पानी से धो डालें।

(११) कत्थई रंग पक्काः-

कत्थे का चूर्ण, ४ छटांक—८ आउन्स; पानी ५ सेर—१ गैलन, आध घंटे तक उबालकर सत निकालें, फिर इस गरम सत में आध घंटे कपड़े को भिगोकर निचोड़ डालें।

तूतिया—१ छटांक-२ आउन्स; गरम पानी ५ सेर—१ गैलन। इसमें १५ मिनट कपड़े को भिगोकर निचोड़ डालें।

लाल कसीस या बाईक्रोमेटः—१ छटांक—२ आउन्स, गरम पानी ५ सेर—१ गैलन, इसमें आध घंटे तक कपड़े को साफ भिगोकर पानी में धो डालिये।

(१२) गाढ़ा कत्थई पक्का:–

पूर्वोक्त नियम से कपड़े पर दोबारा कत्थई रंग चढ़ाने से अच्छा पक्का गाढ़ा रंग कपड़े पर चढ़ता है। एक बार रंग चढ़ाकर कपड़े को अच्छी तरह साफ पानी से धोकर फिर रंग चढ़ावें। प्रत्येक बार इसी कत्थे के सत से काम चल सकता है, परन्तु तूतिया या लालकसीस का पानी प्रत्येक बार नया बनाना पड़ेगा।

(१३) घना कत्थई पक्का:–

कत्थे का चूर्ण ४ छटांक ८ आउन्स पानी--५ सेर--१ गैलन। इसको आध घंटे तक उबाल कर सत बनाइए। कपड़े को आध घंटे तक गरम सत में भिगोकर निचोड़ डालिये।

तूतिया:--१ छटांक--२ आउन्स, हीराकस--१ छटांक--२ आउन्स, गरम पानी ५ सेर--१ गैलन। इसमें कपड़े को आध घंटे तक भिगोकर निचोड़ डालें।

बाइक्रोमेट:--१ छटांक–२ आउन्स, गरम पानी ५ सेर--१ गैलन। इसमें कपड़े को आध घंटे तक भिगोकर साफ पानी से धो डालें।

तूतिया:–१ छटांक २ आउन्स, हीराकष–१ छटांक--२ आउन्स, गरम पानी--५ सेर--१ गैलन। इसमें कपड़े को आध घंटे तक भिगोकर निचोड़ डालें.

बाइक्रोमेट या लालकसीस:–१ छटांक--२ आउन्स, गरम पानी ५ सेर--१ गैलन। इसमें कपड़े को आध घंटे भिगोकर साफ पानी से धो डालें।

कत्थे के साथ ही थोड़ी-सी (पाव तोला) गरान की छाल मिला लेने से कपड़े पर गेरुआ रंग चकोलेट [Chocolate] रंग चढ़ेगा।

(१४) नीला रंग पक्का:–

जिस रीति से नील से रंग निकाला जाता है वह पहिले ही बता दी गई है। नील पानी में नहीं घुलता, परन्तु कई रसायनिक उपायों से नील पानी में घोला जा सकता है। यहां पर एक बहुत ही सुगम उपाय दिया जाता है। नील--२ छटांक--४ आउन्स, हीराकष--४ छटांक–८ आउन्स, फूला चूना आध सेर–१ पोंड; पानी ५ सेर--१ गैलन।

इनको पानी के साथ अच्छी तरह मिलाने के लिये एक बड़ा मिट्टी का बर्तन चाहिये। एक बड़े चौड़े मुंह की नांद या घड़ा इसके लिये ठीक है, जिसमें कपड़ों को डुबाने पर रंग न गिरे और अच्छी तरह भीग जाय। नील बाजार में महंगा बिकता है और यह कई एक काम में लाया जाता है, इसलिये जिसमें नील का पानी खराब न हो वैसा काम करना चाहिये।

एक बड़े पत्थर या चिनिया मिट्टी के खरिल में नील के ढेले को एक रात भिगोने के बाद उसे धीरे-धीरे पीस कर नील के पानी को एक घड़े में डाल देवें। नील खूब अच्छी तरह भिगोना बहुत ही आवश्यक है। खरिल को कई एक बार धोकर सब नील निकाल लेवें।

सब नील घड़े में डाल लेने पर पानी में हीराकष छोड़ देवें। इसके बाद चून को पानी के साथ मिलाकर दूध की तरह चूने के पानी को नील के साथ मिला देवें। चूने में पत्थर के टुकड़े या दूसरी कोई वस्तु या मैल आदि दूर कर नील में मिलाना चाहिये। नील और चूने के लिये जो पानी चाहिये वह परिमाण में दिये हुए २५ सेर पानी में से लेना आवश्यक है। अब घड़े में बाकी मिला देवें।

परिमाण में दी हुई सब वस्तु घड़े में छोड़ देने के बाद एक लम्बी लकड़ी से सब को अच्छी तरह मिला कर मिट्टी के बर्तन का मुंह एक गमले से ढांक देना चाहिये। दूसरे दिन इस नील के पानी को एक लकड़ी से फिर अच्छी तरह मिला कर रख देने से तीसरे दिन यह कपड़े रंगने के लिये तैयार हो जाता है। बर्तन के तले में मैल जम जायगा और ऊपर एक उज्वल नीली सी मलाई पड़ी रहेगी। इस मलाई को हटाने पर नीचे उज्वल कच्चे हरे घास का रंग दिखलाई देगा। यदि अब इस पानी में कपड़ा भिगोया जाय तो वह पहिले फीका हरा और फिर धीरे-धीरे सूखने पर नीला पड़ जायगा।

जिस कपड़े पर नीला रंग चढ़ाना हो वह बहुत साफ और मांड़ रहित होना आवश्यक है—यह बात बहुत पहिले कह दी गई है। मांड़ रहने से रंग सूत के भीतर भिदेगा नहीं और धोने से ही छूट जायगा। रंगने के पहले कपड़े या सूत को पानी से धो डालना चाहिये। छोटे कपड़े को रंगने के लिये मैल को न छू कर ऊपर के पानी से कपड़े को रंगा जा सकता है। परन्तु बड़े कपड़े

को दूसरे उपाय से रंगना पड़ेगा। ऊपर के साफ पानी को एक दूसरे मिट्टी के बर्तन में निकाल कर कपड़े को पानी में भिगो कर उसे अच्छी तरह निचोड़ डाले। निचोड़ने से कपड़े के चारों ओर से हवा निकल जावेगी और कपड़े पर सब जगह अच्छा रंग चढ़ेगा।

अब कपड़े को दो मिनट नील के पानी के भीतर रंग कर निचोड़ डालें फिर कपड़े को सुखाने से धीरे-धीरे नीला रंग चमकेगा। कपड़े को फिर रंग में भिगो कर सुखा लेने से और गाढ़ा रंग चढ़ेगा। यह हरा नील का पानी हवा लगने से थोड़ी देर में सब नील हो जायगा, अतः इस पानी को अब नील के घड़े में फिर डाल दें और लकड़ी से अच्छी तरह हिला कर घड़े का मुंह बन्द करके रख देना चाहिये। दूसरे दिन यह नील का पानी फिर काम में लाया जा सकता है। एक बात यहां पर कहना बहुत ही आवश्यक है कि इस हरे रंग के पानी में नील घुली हुई अवस्था में रहता है और हवा लगने से ओषजन के द्वारा धीरे-धीरे नीला पड़ जाता है। यह नील अनघुल होने के कारण सूत के भीतर नहीं जाता और इसलिये यह कपड़े पर नहीं चढ़ता। यह हरा रंग सूत के भीतर घुस जाता है और सूखने पर हवा लगने से नीला पड़ जाता है तथा अनघुल होने के कारण कपड़े को अब धोने से रंग साफ नहीं हो सकता। कपड़े को नील के हरे रङ्ग के पानी में छोड़ कर उसको उलटने से हवा लगने के कारण यह हरा रङ्ग देखते-देखते नीला पड़ जाता है। इस नीले रङ्ग को घड़े में चूने और हीराकष के साथ रख देने से यह फिर घुल जाता है। यदि खूब हलका नीला रङ्ग कपड़े पर चढ़ाना हो तो नमूने के लिये एक कपड़े के टुकड़े को रङ्ग कर देखें और आवश्यकतानुसार इसमें गरम जल मिला लेना चाहिये। रङ्ग को हलका करने के लिये गरम पानी काम में लावें। क्योंकि ठंडे पानी में हवा घुली हुई रहने के कारण हरा रङ्ग अनघुल होकर कुछ नीला पड़ जाता है।

पूर्वोक्त नियम के अनुसार कपड़े पर दो बार रङ्ग चढ़ाने से कपड़े पर फिरोजी या आसमानी रङ्ग आवेगा। तीन या चार बार रङ्गने से गाढ़ा नीला और कई बार रङ्गने से कपड़े पर काला नीला रङ्ग आवेगा। प्रत्येक बार रङ्गने के बाद कपड़े को हवा में पांच मिनट सुखा कर फिर उसे रङ्गा जा सकता है।

रङ्ग जाने पर कपड़े को एक दिन हवा में सुखा कर दूसरे दिन साफ पानी से धो डालना चाहिये ।

कुछ लोग यह कह सकते हैं कि गाढ़ा नीला रङ्ग रंगने के लिये परिमाण में दी हुई मात्रा को बढ़ा लेने से कपड़े को बार-बार हलके रङ्ग से रङ्गना नहीं पड़ेगा । परन्तु इससे कपड़े पर अच्छा रंग नहीं आता, क्योंकि कपड़े पर धीरे धीरे रंग न चढ़ाने से एकसा रंग नहीं चढ़ता और कपड़े को धोने से कुछ घुल कर निकल भी जाता है ।

कपड़ों को रंग लेने के बाद रंग को फिर घड़े में रखकर एक लकड़ी से चूने और हीराकष के साथ उसे मिला कर घड़े का मुंह बन्द करके रख दें । घड़े के पेंदे में मैल के साथ कुछ अनघुल नील पड़ा रहता है । इसे अच्छी तरह एक लकड़ी से हिला देने से सब नील घुल जाता है । कई बार नील के पानी से कपड़े रंग लेने पर रंग फीका पड़ जाता है, इसलिये दो एक दिन बाद थोड़ा नया नील, हीराकष और चूना (ऊपर लिखे परिमाण के अनुसार) घड़े में मिला देना आवश्यक है ।

रंगरेज लोग इसलिये कई घड़ों में नील के रंग को रखते हैं । इन घड़ों को वह मिट्टी में आधे से ज्यादा गाड़ देते हैं जिससे वह बैठ कर ही कपड़े रंग सकते हैं । जिस घड़े में सब से पुराना रंग है (कई बार रंग चढ़ाने से जिसका रंग बहुत फीका पड़ गया है) उसी में कपड़ों को पाहिले भिगोया जाता है । इस के बाद उन्हें नये रंग में भिगोया जाता है और इस तरह सब से फीके रंग से आरम्भ करके अन्त में सब से गाढ़े रंग में कपड़े को रंगा जाता है । इसमें थोड़ा भी रंग नष्ट नहीं होता और सब काम में आ जाता है ।

(१५) पीला या बसन्ती कच्चा:—

पिसी हल्दी—आधी छटांक–१ औंस; पानी ५ सेर–१ गैलन; फिटकिरी–आधा तोला–डेढ़ ड्राम ।

हल्दी को अच्छी तरह पीस कर पानी में छान लेवें । फिटकिरी को एक दूसरे कटोरे में घोल कर हल्दी के पानी में छोड़ देवें, और कपड़े को इसमें भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ डालें । कपड़ा रंग में जितना भीगेगा उतना ही

अच्छा गाढ़ा रंग चढ़ेगा । रंगने पर कपड़े को निचोड़ कर छांह में सुखा लेना चाहिये ।

हल्दी का रंग पक्का नहीं होता और धूप से फीका पड़ जाता है । क्षार (Alkali) लगने से रंग लाल हो जाता है, परन्तु धोने से फिर थोड़ा फीका पीला रंग पड़ जाता है । कपड़े को केवल पानी से धोने से रंग फीका नहीं पड़ता । फिटकिरी देने से रंग उज्वल और कुछ पक्का होता है ।

(१६) पक्का धानी रंग या सुनहरी:—

अनार की छाल—४ छटांक—८ औंस; पानी–५ सेर—१ गैलन ।

आध घंटे तक उबाल कर सत निकालें । इस गरम सत में आध घंटे तक कपड़ा भिगो कर निचोड़ डालें ।

फिटकिरी–१ छटांक–२ आउन्स; गरम पानी–५ सेर–१ गैलन ।

इसमें १५ मिनिट कपड़े को भिगो कर, निचोड़ कर साफ पानी से धो डालें ।

अनार की छाल के बदले हर्रं का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु इससे अच्छा उज्वल रंग नहीं आता ।

(१७) हरा पक्का:—

नीले और पीले रंग के संयोग से हरा रंग होता है । पहिले कपड़े को नीले रंग में रंगना चाहिये, क्योंकि किसी दूसरे रंग के ऊपर नीला रंग नहीं आता ।

ऊपर बताये हुए नियमों के अनुसार पहले कपड़े पर उज्वल नीला रंग चढ़ा कर एक दिन बाद उसे धोकर सुनहरी रंग से रंगना चाहिये । यहां अनार की छाल के बदले हर्रे से काम चल सकता है ।

(१८) फीका हरा या घास का रंग पक्का:—

ऊपर बताये हुए नियमानुसार पहले नील से कपड़े को आसमानी रंग में रंग कर सुनहरी रंग से रंग लेवें । परंतु अनार की छाल से और वस्तुओं की मात्रा परिमाण (Formula) में दी हुई मात्राओं की आधी कर देनी चाहिये ।

(१६) गुलाबी पक्का:-

यह रंग कुसुम के फूल से निकलता है। कुसुम के फूल में दो प्रकार के रंग होते हैं—एक पीला और दूसरा लाल। पीला रंग पानी में घुल जाता है, और लाल रंग अनघुल है। क्षार युक्त पानी में यह लाल रंग घुल जाता है। कपड़े पर गुलाबी रंग रंगने से पहिले कुसुम के फूल का पीला रंग पानी से धो डालना चाहिये।

कुसुम के फूल—५ छटांक १० आउन्स।

इसे एक मिट्टी के बर्तन में थोड़ी देर तक भिगो दीजिये, इसके बाद इन फूलों को निचोड़-कर पीला रंग निकाल डालिये। जब तक पानी से धोने पर पीला रंग निकलता रहे तब तक फूलों को धोते रहिये।

सोडा—पाव छटांक—आधा आउन्स; पानी—ढ़ाई सेर; आधा गैलन।

अब यह धुले हुए कुसुम के फूल सोडे के पानी में भिगो दीजिये। क़रीब १० मिनट के बाद फूलों को निचोड़ कर सब रंग निकाल कर इसे दूसरे बर्तन में रक्खें। इस रंग में १० मिनट तक कपड़े को भिगो कर अच्छी तरह निचोड़ना चाहिये। अब कपड़े पर कुछ सुनहली चमक आ जाती है। कपड़े को निचोड़ कर निम्न-लिखित पानी में भिगोना चाहिये।

नींबू का रस—४ छटांक-२ आउन्स; पानी--ढ़ाई सेर-आधा गैलन।

खट्टे नींबू के रस से काम अच्छा होगा। यदि नींबू न मिले तो ४।५ छटांक कच्ची या पक्की इमली या कच्चे आम को पीसकर पानी में घोल कर एक पतले कपडे से छान लीजिये। यह खट्टा पानी कपडे पर लगते ही उस पर लाल रंग आ जावेगा। कुछ समय तक कपडे को अच्छी तरह निचोड कर साफ पानी से धो डालें। यदि रंग और गाढ़ा करना हो तो पूर्वोक्त विधि से कपडे को कुसुम के फूल के पानी से और फिर नींबू के पानी से एक बार और कपडे को लाल रंग से रंग लेवें। नींबू का रस खूब खट्टा होना अति आवश्यक है, नहीं तो कपडे पर अच्छा लाल रंग नहीं आता।

कुसुम के फूल का रंग लाल और उज्वल होता है, परन्तु साबुन से और धूप लगने से बहुत फीका पड जाता है। हां केवल साफ पानी से धोने से रंग नहीं छूटता।

(२०) बैंगनी पक्का:-

पतंग चूर्ण-२ छटांक-४ आउन्स; पानी--५ सेर-१ गैलन, फिटकिरी-पाव छटांक-आधा औंस।

१५ मिनट इसे पानी में उबाल कर छान डालिए। इस गरम सत में १५ मिनट कपड़ा भिगोकर निचोड़ डालिए।

सोडा-पाव छटांक-आधा औंस; पानी-५ सेर १ गैलन

इसमें कपड़े को भिगो कर १० मिनट बाद निचोड़ डालिए। छांह में कपड़े को सुखाना चाहिए।

यह रंग साबुन से धोने से स्थायी नहीं रहता, केवल पानी से ही धोने से कुछ रंग जाता रहता है। रंगने के समय सोडा न देने से भी काम चल सकता है, परन्तु सोडा के न रहने से रंग बैंगनी बनकर लाल बनता है।

(२१) गुलाबी पक्का:—

साबुन-आधी छटांक-१ औंस; गरम पानी--डेढ़ सेर-आधा गैलन

साबुन के छोटे-छोटे टुकड़े काट कर पानी में घोल दीजिए। इसमें करीब १५ मिनट तक कपड़े को भिगोकर निचोड़ डालें और साफ पानी से बिना धोये सुखा डालें।

मंजिष्ठा चूर्ण-४ छटांक-८ औंस; पानी--५ सेर-१ गैलन; फिटकिरी-आधी छटांक-१ औंस।

एक ऐसे बर्तन में जिसमें दस सेर जल आसके इन्हें चूल्हे पर चढ़ा दीजिए। कपड़े को पानी में छोड़ कर एक लकड़ी से अच्छी तरह हिलाते रहिये जिसमें मंजिष्ठा (मजीठ) का चूर्ण कपड़े पर अच्छी तरह लग जावे। एक घण्टे तक खूब धीमी आंच में कपड़े को पानी में गरम करें, और बीच-बीच में लकड़ी से चलाते रहिये। अब इसे निचोड़ कर १ छटांक सोडा और ५ सेर पानी में आध घण्टे तक उबाल कर सुखा डालना चाहिये।

(२२) लाल रंग पक्का:—

यहां पर कपड़े को मंजिष्ठा से लाल रंग में रंगने की विधि लिखी जायगी, परन्तु इस रीति से रंग कुसुम के फूल के रंग से उज्वल नहीं होगा।

मंजिष्ठा से कपड़े को रंगने के लिये निम्न-लिखित वस्तुएं चाहिये—फिटकिरी का पानी, सोडे का पानी, साबुन का पानी, और मंजिष्ठा का चूर्ण, (मंजिष्ठा के बारे में पहले लिखा गया है।)

फिटकिरी का पानी—फिटकिरी ५ छटांक पानी–५ सेर या १ गैलन। फिटकिरी को महीन पीस कर पानी में छोड़ते ही घुल जायगी। जब फिटकिरी पानी में घुल जाय तो उस पानी को एक मिट्टी के घड़े या गमले में रखें।

सोड़ा का पानी—सोडा आधा सेर या १ पाउंड, पानी ५ सेर या १ गैलन। सोडे का पानी में घोल कर एक मिट्टी या कोई दूसरे बर्तन में रक्खें। यदि सोड़े के साथ मैल मिला हो तो उसे छान डालें।

साबुन का पानी—अच्छा कपड़ा धोने का साबुन (Bar saop) डेढ पाव या १२ औंस; पानी ५ सेर या गैलन। साबुन के छोटे छोटे टुकड़े काट कर पानी के साथ गरम करने से सब साबुन घुल जावेगा।

रंगने की विधि

(१) फिटकिरी का पानी–५ सेर–१ गैलन, सोडे का पानी १॥ पाव १२ आउन्स

फिटकिरी का पानी एक चौड़े मुंह के बर्तन में रक्खें, और सोड़े के पानी को इस फिटकिरी के पानी में धीरे-धीरे छोड़ते जायं। सोड़े के पानी को पहिले छोड़ते ही फिटकिरी का पानी सफेद हो जायगा और दही की तरह एक सफेद वस्तु बर्तन के तले पर बैठ जावेगा। फिटकिरी के पानी को एक लकड़ी से खूब चलाते रहिये। सोड़े के पानी को और छोड़ने पर फिटकिरी का पानी धीरे-धीरे साफ हो जायगा। सोडे का पानी बहुत थोड़ा थोड़ा, यहां तक कि एक-एक बूंद करके अब फिटकिरी के पानी में छोड़ते रहिये। यदि सब सोड़े के पानी से फिटकिरी का पानी साफ न हो जावे तो फिर और सोड़े का पानी मिलाना आवश्यक नहीं है। यही मिलाया हुआ पानी काम दे सकेगा। इसे ज्यादा देर तक रख छोड़ने से यह खराब हो जाता है और काम में न आ सकेगा। इस तरह बनाए हुए पानी में आध घण्टे तक कपड़े को भिगो कर अच्छी तरह निचोड़ कर सुखा डालें। इसके बाद १२ घण्टे कपड़े को हवा में फैला रक्खें।

(२) विधि नं० (१) के अनुसार सोडा और फिटकरी का पानी बना कर कपड़े को आध घण्टे तक भिगो कर निचोड़ लें और सुखा डालें सुखा कर कपड़े को १२ घंटे हवा में रक्खें।

(३) साबुन का पानी ५ सेर—या १ गैलन, किसी बर्तन में लेकर साफ कपड़े को साबुन के पानी में छोड़ कर आध घंटे तक हिलाते रहिये। सुखा कर कपड़े को १२ घंटे तक हवा में छोड़ रक्खें। इसके बाद विधि (१) के अनुसार फिर फिटकरी-सोडे का पानी बना कर आध घंटे कपड़े को भिगो कर सुखा डालें। सुखा कर कपड़े को आध घंटे हवा में रक्खें। अब इस कपड़े पर रंग चढ़ाया जा सकता है। नं० (१), (२) और (३) विधियों के अनुसार सब काम करना बहुत ही आवश्यक है। नहीं तो कपड़े पर रंग नहीं चढ़ेगा।

(४) मंजिष्ठा का चूर्ण (महीन) ४ छटांक—८ आउन्स, पानी ५ सेर—१ गैलन,

मंजिष्ठा का चूर्ण मैदे के समान महीन होना चाहिये। मंजिष्ठा का चूर्ण पानी में छोड़ कर एक लकड़ी से कपड़े को अच्छी तरह चलाते रहिये, जिससे चूर्ण कपड़े में सर्वत्र अच्छी तरह लग जावे। इसके बाद कपड़े को बर्तन में रख कर धीमी आंच पर गरम कीजिये। कपड़े को लकड़ी से हिलाते रहिये। इस तरह तीन घंटे तक उबाल कर कपड़े को निचोड़ कर अच्छी तरह झाड़ डालिये। उबालने के समय लकड़ी को चला कर जितना कपडे को हिलाते रहियेगा उतना ही एक-सा रंग कपड़े पर चढ़ेगा।

(५) सोडा १ छटांक—२ आउन्स, पानी ५ सेर—१ गैलन

इसमें कपड़े को और आध घंटे तक उबाल लेने से कपड़े पर अच्छा पक्का रंग चढ़ेगा। इसके बाद ३,४ और ५ नियमों से कपड़े पर दो बार रंगने से और अधिक गाढ़ा रंग आता है।

गरान की छाल ऊपर लिखे प्रयोग में इसका केवल दो बार वर्णन आया है। इसके द्वारा और भी कई प्रकार का रंग बनाया जा सकता है। विधि नं० ३ में हर्रा के चूर्ण के साथ उतनी ही गरान की छाल मिला लेने से अच्छा कत्थई रंग बनता है। विधि नं० १३ में करीब आधा तोला गरान की छाल मिला लेने से चाकलेट रंग बनता है। विधि नं० १४ के द्वारा उज्वल नील चढ़ा कर विधि नं० ४ से गेरुआ रंग चढ़ाने से पक्का बैंगनी रंग बनेगा।

बदामी रंग विधि नम्बर ६ में हीराकष प्रयुक्त होता है। कपड़े पर हीराकष का पानी अच्छी तरह न लगने से चूना देने पर कपड़े पर जगह-जगह धब्बे पड़ जाते हैं। ऐसा होने पर कपड़े पर का रंग साफ करना बहुत जरूरी है। पानी व ओग्जेलिक एसिड (Oxalic Acid) घोल कर (पानी २० भाग, अमल १ भाग) इसमें कपड़े को भिगोने से सब रंग धुल जाता है। इस अमल की जगह नींबू का रस भी काम में लाया जा सकता है, परन्तु इससे बहुत देर में रंग छूटता है।

चूना के बदले सोड़ा का प्रयोग करने से काम चल सकता है और कपड़े पर सहज ही रंग चढ़ाया जा जाता है।

नील का रंग विधि नम्बर १४ से कपड़े को घना नीला या काला नीला रंगने में कपड़े को कई बार नील के पानी में रंगना पड़ेगा, इसलिये इस रंग में बहुत व्यय होगा। यदि तीन बार रंगने से कपड़े पर उज्वल नीला रंग आ जावे तो विधि नम्बर ७ के अनुसार कपड़े पर केवल एक बार काला रंग चढ़ाने से बहुत अच्छा काला चमकेगा।

वस्तुओं का परिमाण—प्रयोग में दिये हुए परिमाणों में जो तौल दिये गये हैं, उनसे केवल एक साड़ी रंगी जा सकती है, क्योंकि एक समय में एक कपड़े पर सहज में रंग चढ़ सकता है। जो लोग रंगने के काम मे निपुण हो गये हैं वह परिमाण की दी हुई मात्राओं को बढ़ा कर दो या तीन साड़ी भी एक साथ रंग सकते हैं।

नील—नील को पानी में घोल कर नील का पानी तैयार करने के लिये केवल एक ही उपाय बतलाया है। हिन्दुस्तान में अक्सर नील का सड़ा कर उसका पानी बनाया जाता हैं। नील एक भाग, चूना एक भाग, सज्जी मिट्टी दो भाग, और पानी २०० या ३०० भाग, इन सब को एक साथ मिला कर एक मिट्टी के घड़े में रखिये। इसमें कुछ गुड़ और कुछ नील का सड़ा पानी मिला देने से नील घुल जाता है। नील घुल जाने पर विधि नम्बर १४ से कपड़ा रंगा जा सकता है। पुराना नील का पानी किसी रंगरेज से मिल जायगा। इस प्रकार से नील का पानी बना कर कपड़ा रंगने से वैसा उज्वल नहीं होता, परन्तु ज्यादा पक्का होता है।

इस नियम से या विधि नम्बर १४ से नील का पानी बनाने से घड़े के तले पर बहुत मैल पड़ जाता है, और इसलिये बड़ा कपड़ा या सूत रंगने के समय हरे रंग के नील के पानी को दूसरे घड़े में रखना पड़ेगा। इस पानी में हवा लगने से धीरे-धीरे नीला पड़ जायगा और इससे अब कपड़ा रंगा नहीं जा सकता। इस नीले पानी को फिर घड़े में छोड़ कर मैल के साथ खूब मिला कर रख देना चाहिए। दूसरे दिन फिर वह काम में आ सकता है।

इस्तरी करना—यदि कोई बेचने के लिए कपड़ा रंगे तो इस्तरी करना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इससे कपड़े पर का रंग चमकदार दीखता है।

सत बनाना बहुत जगह पर सत निकालने के लिए आध घंटे तक उबालने के लिए लिखा गया है। जिस समय से पानी खौलना आरम्भ हो उस समय से आध घंटा लगाना चाहिये।

(स्वराज से उद्धृत)

सामाजिक प्रगति

महा-मन्त्री की कोटा यात्रा

कोटा राजपूताना में श्रीमान् पाथूलालजी साहब पौरवाड़ जो अपनी ज्ञाति के सदस्य हैं उन्होंने अपने खर्चे से जैन-मन्दिर बनवाया है वहां पर वैदी प्रतिष्ठा फाल्गुन शुक्ला १० को थी अतएव पौरवाल महा-सम्मेलन के उद्देशों का प्रचार करने के लिये पौरवाल प्रान्तिय सम्मेलन भरने का वहां के लोगों ने इरादा किया। जिस पर मेरे पास निमंत्रण आया। स्थानीय संघ के निमंत्रण को मान देकर तीन महाशय कोटा गये। जिनमें श्रीमान् सिंघी बीजेराजजी मंत्री, शाह अजेराजजी व मैं था। हम लोग नियत समय पर रवाना होकर कोटा पहुँचे। जहां पर आजूबाजू के प्रांत में दो हजार से अधिक पौरवालों के घर हैं। उन लोगों की स्थिति साधारण है और वे अपने आपको पद्मावती

पौरवालों के नाम से जाहिर करते हैं उनका यह भ्रम था कि हमारे सिवाय पौरवालों के घर कहीं पर नहीं है अतएव उनको पौरवाल ज्ञाति का परिचय कराया गया ताकि उनका भ्रम दूर होगया और हम लोगों का अच्छा स्वागत किया। हमारा जाहिर भाषण वाईली मेमोरियल-हाल में हुआ। जहां पर करीब तीन हज़ार जनता एकत्रित थी। भाषण भी पौरवाल ज्ञाति के परिचय पर ही था। उनके हृदय में यह अंकुर पैदा किये कि पौरवाल ज्ञाति की सब पेटा ज्ञाति परस्पर मिलकर एक ही है। दूर २ देशों में जा बसने से भिन्न २ नाम से पुकारी जाती है और दूर होने की वजह से विवाह सम्बन्ध न होने से एक दूसरे का परिचय अधिक नहीं है। पौरवाल २ में ही सम्बन्ध हो जाना ज्ञाति की उन्नति है। उन लोगों की भी भावना भाषण से जागृत की कि इस देश का संबन्ध हमारे देश के साथ शुरु किया जाय। अब मेरा यही कहना है कि इस देश की अन्य जनता अपने से बिछड़े हुए दूर के भाइयों को अपनायेगी तो अपने समाज की त्रुटी शीघ्र पूर्ण हो जायगी। उस देश में कन्या विक्रय का प्रचार नहीं है। जनता साधारण है, आवक व्यय भी उनके साधारण हैं। अतएव सहज में ही जो इस देश के समाज में त्रुटी है वह उनके साथ सम्बन्ध बढ़ाने में पूरी हो सकेगी। आगेवान इस पर ध्यान दें और अपना प्रयत्न उस देश के साथ व्यवहार-वृद्धि करने का जारी रक्खें।

एस० आर सिंघी
महा-मन्त्री श्री अ० भा० पौ०
महा—सम्मेलन,
सिरोही (राजपूताना).

———:o:———

व्यापार

पेटरोल, केरोसिन और क्रूड ऑइल्स

उपरोक्त तीनों चीज़ों का व्यापार विदेशियों के हाथ में है। इन चीज़ों का ख़र्चा सारे भारत में बहुत है। यदि इन तीनों चीज़ों का व्यापार भारतीय कम्पनी द्वारा किया जाय तो भारत को यथेष्ठ फायदा हो सकता है। पौरवाल समाज के धनाढ्य व्यक्ति या साधारण व्यक्तिएं कम्पनी को फोर्मकर इस व्या-

पौर को करें तो इससे हर शहर में पौरवाल समाज के दो चार व्यक्तियों को यथेष्ठ लाभ पहुँच सकता है और देश को भी यथेष्ठ लाभ हो सकता है। एक छोटे से पोर्ट के ख़र्चे के आंकड़े देते हैं जिससे पाठकगणों को इस व्यापार के विषय में पूर्ण ज्ञान हो जायगा।

पेट्रोल

पोर्ट पर पेट्रोल की क़ीमत एक टन पर Sh-65/-	रु०	४३-५-४
पोर्ट पर पेट्रोल एक गेलन की क़ीमत		०-२-३½
एक गेलन पर कस्टम विगेरा टेक्स		०-१०-०
दूसरे ख़र्चे		०-०-८½
कमीशन एजेन्ट का एक गेलन पर		०-२-०
	रु०	०-१५-०
इस वक्त कम से कम रेट करांची पोर्ट पर रु० १-४-० है परन्तु		
प्रतिस्पर्धा में यदि एक रुपया ही गिना जाय तो कुल	रु०	१-०-०
रक़म क़ीमत विगेरा की बाद करते नेट प्रोफिट		०-१५-०
एक आना रहता है।		०-१-०
करांची पोर्ट पर फिलहाल बेचान १,३०,००,००० गेलन का है अगर सेल १० % हो तोभी नफा १३,००,००० एक आना लेखे गेलन पर	रु०	८१,२५०

फुएल ऑइल

पोर्ट पर फुएल ऑइल एक टन की क़ीमत Sh. 43/-	रु०	२८-१०-४
कस्टम ड्यूटी @ १२½ % (टेरिफ रु० ४२-८-० की क़ीमत पर) एक टन पर		५-५-०
एजेन्ट का कमीशन एक टन पर		७-८-०
दूसरा ख़र्चा		२-०-०
	रु०	४३-८-०

मौजूदा बिक्री करांची पोर्ट पर ५४००० टन है अगर उसका दशवां हिस्सा भी बेच दिया जाय तो ५४०० टन बेचा जा सकता है।

अभी करांची में एक टन पर रु० ८२-८-० है। अगर यह प्रतिस्पर्धा में बेचा जाय तो भी कम से कम रु० ६७-८-० में बेचा जा सकता है इस तरह से एक टन पर रु० २४) रहते हैं तो

५४०० टन पर	रु०	१,२६,६००

केरोसिन ऑइल

पोर्ट पर केरोसिन ऑइल दो डिब्बों के	रु०	१--४--८
कस्टम ड्यूटी	रु०	१-१४--०
दूसरा खर्चा		०--१-१०
एजेन्ट का कमीशन दो डिब्बो पर		०--३--०
	रु०	३--७--६

अभी करांची पोर्ट पर केरोसिन की बिक्री १,६०,००,००० गेलन सालीयाना है इस वक्त आठ गेलन दो डिब्बों का रेट रु० ५-७-६ है यदि प्रतिस्पर्धा में रु० ४-७-६ में दो डिब्बे बेचे जायं तो भी रु० १-०-० दो डिब्बों में रहता है इस तरह से

२,००,००० युनीट (दो डिब्बों) पर	रु०	२,००,०००

पेट्रोल से फायदा	रु०	८१,२५०-०-०
फ्युएल ओइल से फायदा	रु०	१,२६,६००.०-०
करोसीन ओइल से फायदा		२,००,०००-०-०
	कुल रु०	४,१०,८५०-०-०
सालीयाना खर्चा बाद	रु०	९०,०००-०-०
	सही नफा रु०	३,२०,८५०-०-०

भारत में पेट्रोल ६१०००००० गेलन, क्रूड ऑइल १०६०००००० गेलन और केरोसीन २१४०००००० खर्च होता है इस पर से आप लोग आमद का अन्दाजा लगा सकते है।

श्री अखिल भारतवर्षीय पौरवाल महा-सम्मेलन

के

आय व्यय का हिसाब

मिती संवत् १९९० का श्रावण शु० ७ तक

जमा

१२९,०८॥।=)	गुजिस्ता साल की पैदायश
२३३९)	आगामी निभाव फंड
१३१)	श्री जैन-मित्र-मण्डल, बम्बई
२६॥।-)	शाह भीमाजी मोतीजी, अहमदाबाद
३॥)	सिंघी नथमलजी मिलापचन्दजी, सिरोही
१५,४०९।≡)	

नावें

९१९३।)।	गुजिस्ता साल का खर्च
२२॥।)॥।	तार व पोस्टेज़
८८॥।≡)	सफर ख़र्च
५८-)	अख़बार
२०६)॥	तनख्वाह तालके ख़र्च आश्विन शु० ५ से
२९॥।≡)	सम्मेलन के फोटो तालके ख़र्च
३॥।)	मकान किराया तालके ख़र्च द्वितीय वैशाख बदी १ से
३७५॥।=)॥	श्री महावीर अख़बार
१९०१)	शाह रायचन्दजी पन्नाजी ट्रेजरर मंडवारिया वालों के पास
३४२)	सेठ भबूतमलजी चतराजी देलदर
८००)	सिंघी पुनमचन्दजी हँसराजजी, सिरोही
५२१-)॥	सिंघी समरथमलजी रतनचन्दजी, सिरोही
५०१)	सेठ डाहाजी देवीचन्दजी, मंडवारिया

५१) डोसी समरथमलजी किस्तूरचन्दजी, सिरोही

११) शाह सोहनमलजी जोरजी, सिरोही

३०) ड्राईवर रायचन्दजी, सिरोही

७≡) शाह अजेराजजी जवानमलजी, सिरोही

५) शाह कपूरचन्दजी गुलाबचन्दजी, सिरोही

५) वेहित्रा मिश्रीमलजी, सिरोही

२५) सिंघी विनयचन्दजी, सिरोही

१५) वेहित्रा पूनमचन्दजी

५) श्री बामणवाड़जी कारख़ाना खाते

५) शाह रिखबदासजी भबूतमलजी, शिवगंज

२४।≡) शाह ओंकारमलजी नेमाजी, इन्दौर

७००) भीमाजी मोतीजी, बम्बई

५२।-) पंच महाजनान लास

६०) बी० एम० जवेरिया, उदयपुर

५१) सिंघी विजेराजजी, सिरोही

२५) दुलाजी पिथाजी, पाफला

२५) सिंघी कुन्दनमलजी, सिरोही

२५) शाह ओंकारमलजी नेमाजी, सिरोही

२१) बदनमलजी बेसावत, उदयपुर

११) शाह मोतीलालजी जवेरचन्दजी, खंडवा

११) शाह छाजूलालजी फतुसाजी, सक्करगांव

११) प्यारेलालजी केसरी-चन्दजी, पंधाना

११) शाह धनासाजी मगन-लालजी, पंधाना

५) शाह भबूतमलजी देवाजी, अगवरी

५) शाह कृष्णलालजी रतनावत, चंदवासा

५) शाह किशनसिंहजी लछमणसिंहजी, देवास

५) शाह दशरथसाजी गजरसाजी, पंधाना

५) शाह मोतीलालजी दुलीचन्दजी, पंधाना

५) शाह छोगमलजी सोमाजी, खिड़किया

५) शाह भीखचन्दजी गङ्गारामजी, बांकली

५) श्रीमती भबूबाइ, रावला निवासी
२॥) शाह ओगाजी चम्पालालजी, उदयपुर
३०) पंच पौरवाल, सिरोही
१।) श्री जीवदया प्रचारक-मण्डल, गुडाबालोता
५१) गांव बेड़ा पंच पौरवाल

१५,३५५ =)॥
५३॥।=)॥ श्री पोते बाकी

१५,४०६।=)

पौरवाल ज्ञाति का इतिहास
व
शिवनारायणजी पौरवाल (यशलहा) इन्दौर

पौरवाल ज्ञाति का इतिहास कितना महत्व पूर्ण है? उसको तो वे ही मनुष्य जान सकते हैं जिन्होंने इस ज्ञाति के प्राचीन इतिहास का मनन किया है। पौरवाल ज्ञाति का प्रभाव भारतभूमि पर बहुत समय तक रहा है और इस जाति के वीरों ने महत्व पूर्ण कार्य किये हैं जिसकी प्रशंसा मुक्तकण्ठ से पश्चात्य विद्वानों ने भी की है उसी जाति के इतिहास का संकलन श्रीयुत् शिवनाराणजी आज १४, १५ वर्ष से कर रहे हैं और इसके लिये उन्होंने बहुत सामग्री भी इकट्ठी कर ली है हमें इस बात की अधिक खुशी है कि पौरवाल ज्ञाति का इतिहास एक पौरवाल युवक द्वारा लिखा जाकर प्रकाशित हो। शिवनारायणजी पौरवाल ज्ञाति को सुसम्पन्नावस्था में देखना चाहते हैं अतएव ज्ञाति को जागृत करने के लिये अधिक परिश्रम करके भी इतिहास संकलन कर रहे हैं इसके लिये जितना धन्यवाद उनको दिया जाय थोड़ा है। शिवनारायणजी द्वारा लिखा हुआ पौरवाल ज्ञाति का इतिहास प्रथम भाग में प्रकाशित होगा और उसमें वे सब विषय होंगे जो 'महावीर' के इसी अङ्क में पेज नं० १०७ से ११० पर छपे हैं।

महावीर के पाठकगण ! तथा पौरवाल समाज यह सुन कर खुश होंगे कि शिवनारायणजी ने आज तक परिश्रम कर जो इतिहास तैयार किया है वे उसको पोरवाल महासम्मेलन को भेट करना चाहते है। और सम्भव है कि इसके पूर्ण तैयार हो जाने पर यदि नजदीक भविष्य में सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन हुआ तो वे स्वयम् उसको Manuscript के रूप में भेट करेंगे वरना पोरवाल सम्मेलन ओफिस उसको छपवा कर प्रकाशित करेगी। हम अन्तःकरण से शिवनारायणजी को धन्यवाद देते हैं और उनसे अनुरोध करते हैं कि वे बहुत शीघ्र इतिहास की Manuscript कोपी सम्मेलन ओफिस को भेजने की कृपा करें।

सम्पादक

पौरवाल समाज और दूसरा अधिवेशन

पौरवाल महासम्मेलन को हुए आज दो वर्ष होने आये हैं परन्तु अभी तक दूसरा सम्मेलन भरने का निमंत्रण नहीं आया है जिसका मुख्य कारण यह है कि गत सम्मेलन में आवश्यकता से अधिक खर्चे का प्रश्न भावि अधिवेशन को रोकता है। निस्संदेह प्रथम अधिवेशन पर खर्चा अधिक हुआ था। इस समय व्यापार की बड़ी भारी मन्दी होने से बड़े खर्च से सम्मेलन को निमंत्रण करने को कहीं का संघ तैयार नहीं है। अतएव हमारे विचार से मई के महीने में सम्मेलन श्रीबामणवाड़जी तीर्थ में भरा जाय तो उत्तम है और आयन्दा भी यदि सम्मेलन का वार्षिक निमंत्रण न मिले उस वर्ष सम्मेलन का अधिवेशन श्रीबामणवाड़जी महातीर्थ में ही निश्चय किया जाय। सम्मेलन में पंडाल का खर्चा न किया जाय। सम्मेलन की मिटिङ्ग रात को की जाय जिससे पंडाल का खर्चा कम से कम एक हजार बच जाय। जीमने के लिये बीसियों का बन्दोबस्त किया जाय जहां पर डेलीगेट चार्ज देकर जीम सके।

सम्मेलन डेलीगेटों के लिये रहने का, पानी का व रोशनी का इन्तज़ाम करें। इस काम को करने में रुपये एक हजार से अधिक का खर्चा नहीं हो सकता अलावा इसके एक हजार का दूसरा खर्च ऑफिस आदि को भावि में साल भर चलाने का होगा जो निभाव फण्ड व डेलीगेटों की फीस से बआसानी पूरा हो सकेगा। यदि पौरवाल जाति को अपने पुरखाओं के सदृश यश, कीर्ति और जाति को जीवित रखना है तो सम्मेलन को स्थाई तौर पर चलाना चाहिये, और संसार भर के पौरवालों के साथ रोटी बेटी व्यवहार खोल देना चाहिये।

अभी हमें सुदर्शन से यह भी पता चला है कि एक ओसवाल जो १५-२० साल से मुसलमान हो गया था और उसने भिशितन के साथ विवाह किया था जिससे उसके कई लड़के लड़कियां हुई। स्यालकोट के स्थानीय संघ जैनियों ने उसको व उसके कुटुम्ब को जैन विधि से शुद्ध कर अपने में मिला लिया। हर्ष का विषय है कि शुद्ध हुए जैन महाशय ने जब अपने नये घर का प्रवेशोत्सव किया तब स्यालकोट की जैन बिरादरी के सब स्त्री पुरुष उनके सहभोजन में सम्मलित हुए इस मौके पर खास बात यह हुई कि वह भिशितन जैन धर्म में परम् श्रद्धालु है। नित्य सामायिक और दर्शन करती है उनके साथ किसी प्रकार का कोई भेद विरोध नहीं रखा गया है। खबर है कि श्वेताम्बरी जैन स्त्रियों ने उसके साथ एक पत्तल में बैठ कर भोजन किया था। सहभोज में दिगम्बर श्वेताम्बर सब ही जैनी सम्मलित हुए थे।

आप लोगों को यह देख कर आश्चर्य होगा कि ओसवाल लोग अपने अन्दर से मुसलमान हुए भाई को फिर ओसवाल बनाते हैं जब कि आप लोग परस्पर क्लेश कर हर जगह टुकड़ों २ में विभाजित हैं और जाति को रसातल की और लेजा रहे हैं। सिरोही का एक प्रसङ्ग है कि बाहितरा लालचन्दजी ने धोखे में एक विवाह किसी अनजान ज्ञाति की स्त्री से किया था। जिसको पौरवाल सुधारक पार्टी ने अक्लमन्दी से शामिल रखा है जिसके लिये उनको धन्यवाद है परन्तु इस विवाह की वजह से दो पार्टी हो गई हैं। हमारा सबसे सानुरोध निवेदन है कि लालचन्दजी की अज्ञानता को क्षमा कर सब सिरोही की पौरवाल जाति को एक ही जाना चाहिये।

उपरोक्त ओसवाल जाति संगठन को देख कर भी पौरवाल ज्ञाति को सचेत हो जाना चाहिये। सचेत हो जाने के लिये और ज्ञाति को ठीक रास्ते पर लाने के लिये ही सम्मेलन भरने की आवश्यक्ता है।

सम्पादक

आवश्कीय सूचना

महावीर

सिरोही में स्थानिक प्रेस न होने से पत्र बराबर नहीं निकलता है इसलिये दूसरे अधिवेशन तक जब तक इसको बाहिर से छपवाने का प्रबन्ध न हो तब तक यह पत्र रिपोर्ट के रूप में सौ सवा सौ पृष्ठों में छः माही निकला करेगा यानी साल भर में दो बार प्रकाशित होगा जिसका वार्षिक मूल्य रु० १) मय पोस्टेज के होगा।

प्रकाशक—

समर्थमल रतनचन्दजी सिंघी, महा मंत्री,

श्री अखिल भारतवर्षीय पौरवाल महा सम्मेलन

सिरोही (राजपूताना).

श्रीबामणवाड़जी तीर्थ में जैन मीयुजियम खोला गया है जहां २ प्राचीन खंडित मूर्तिएं हो श्रीबामड़वाड़जी भेजने की कृपा करें।

प्रार्थी—

ताराचन्द दोसी

हुनर विज्ञान साहित्य मंडल, सिरोही

द्वारा

प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

१ साबुन विज्ञान	२ शर्बत उद्योग
३ सुगन्धित तैल	४ फोटोग्रामी दो भाग
५ आम्रकुंज	६ उद्यान
७ घड़ीसाजी	८ रंगने की विधि
६ सीमेन्ट विज्ञान	१० पेन्ट वारनिश
११ विविध तेजाब	१२ सर्वेइङ्ग
१३ बिल्डिङ्ग मेटेरीयल्स	१४ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र, १० भाग
१५ विद्युत शास्त्र, ५ भाग	१६ ओइल इञ्जिन और पम्पस
१७ डाईनोमा की व्यवस्था	१८ व्यापारी नुस्खे ५ भाग
१६ इलेक्ट्रो प्लेटिङ्ग	२० चक्कर बनाने की विधि
२१ ओइल और गेस इञ्जिन	२२ विद्युत स्वावलम्बन

उपरोक्त पुस्तक हरएक की कीमत रु० १।) है जिस विषय के अधिक भाग हैं उन प्रत्येक की पहिले भाग के अलावा कीमत रु० १॥) है। पुस्तक विक्रेतों के लिये खास नियम रक्खे गये हैं। वे पत्र व्यवहार से पुस्तकों की बिक्री का निश्चय कर सकते हैं।

मैनेजर,

हुनर विज्ञान साहित्य मंडल,

सिरोही (राजपूताना).

शुभ सन्देश ! विशाल आयोजना !!

पौरवाल ज्ञाति का विशाल इतिहास

सचित्र मन्दिरावली

और

डायरेक्टरी

भारतवर्ष में पौरवाल जाति बहुत ही गौरवशाली जातियों में से एक है जिसने आज से हजार पांच सौ वर्ष पूर्व अनेक महान् कार्य किये हैं और मुख्यतः मन्दिरों के निर्माण करने में जो यश प्राप्त किया है वह निःसन्देह प्रशंसनीय है जिनकी जोड़ के मन्दिर इस संसार की सपाटी पर नहीं हैं। इस जाति ने अपनी अपूर्व वीरता अलौकिक राजनीतिज्ञता व्यापारिक दूरदर्शिता आदि महान् गुणों से इतिहास के पृष्ठों को उज्ज्वल किया है। जिन सज्जनों ने राजस्थान के इतिहास के साथ गुजरात के इतिहास को ध्यान पूर्वक मनन किया है वे जानते हैं कि इस जाति के महान् पुरुषों ने जहां युद्ध-क्षेत्र में अपनी अपूर्व रणचातुरी का परिचय दिया है, वहां राजनीति के मंच पर भी इन्होंने बड़े-बड़े खेल-खेले हैं। इसी प्रकार व्यापारिक जगत में भी इन्होंने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। एक मूंजाल जो गुजरात का प्रधान मंत्री था उसकी हुंडी यूयान तक में सिकारी जाती थी।

इस जाति में अनेक लौकिक विभूतियां होगई हैं जिन्होंने भारत के इतिहास को बनाने में बहुत बड़ा हिस्सा लिया है। महामंत्री मूंजाल, विमलशाह, वस्तुपाल, तेजपाल, पेथड़कुमार, धनाशाह इत्यादि महापुरुषों ने समय २ पर अपनी रण-नीतिज्ञता एवं राजनैतिक और व्यापारिक प्रतिभा का अपूर्व दिग्दर्शन कराया है।

पर इस बात का बड़ा खेद है कि इस गौरवशाली जाति का अब तक कोई प्रमाणबद्ध सुसंगठित इतिहास निर्माण नहीं हुआ है। यह कहने की आवश्यक्ता नहीं कि जिस जाति का इतिहास नहीं है वह एक न एक दिन गहरे अन्धकार में लीन हो जाती है। उसके सदस्य अपने गत गौरव को भूल जाते हैं क्योंकि जिस जाति का भूतकाल उज्ज्वल नहीं होता, उसका भविष्य भी कभी उज्ज्वल नहीं हो सकता।

कुछ युवक इस जाति का सुसंगठित इतिहास तैयार करने के लिये बहुत दिनों से बाट देखते थे। परन्तु इसमें अधिक खर्चे व कठिनाइयों को देख कर अब तक किसी महाशय ने इसको निर्माण करने का कार्य अपने हाथ में नहीं

लिया। सम्मेलन के योग्य कार्यकर्त्ताओं के उत्साह से और बहुत से उत्साही मित्रों के सहयोग से इस कार्य को पूर्ण करने का काम हाथ में लेते हैं। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि इस कार्य को पार लगाने में हिमालय के समान बड़ी-बड़ी कठिनाइएं हमारे मार्ग में आयेंगी। पर हम जन्म से ही आशावादी हैं। हमारा यह अटल विश्वास है कि प्रबल इच्छा शक्ति के सामने बड़ी से बड़ी कठिनाइयां दूर होकर कार्य सफल हो जाता है।

उपरोक्त तीनों ग्रन्थ बहुत खोज और अन्वेषण के साथ तैयार किये जायेंगे। प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, पुराने रेकार्ड्स, संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी तथा गुजराती भाषाओं में उपलब्ध सैंकड़ों नये पुराने ग्रन्थों से इसमें सहायता ली जा रही है। अनेक राज्यों के दफ़्तरों से भी इसके लिये सामग्री इकट्ठी की जाने का प्रबन्ध हो रहा है। जहां २ पौरवालों की बस्ती है उन छोटे बड़े सब नगर, शहर और ग्रामों में घूम कर इसको सम्पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। प्राचीन और नवीन अनेक पौरवाल महापुरुषों के इसमें हजारों फोटो संग्रह किये जा रहे हैं। तथा बड़े २ घरानों का विस्तृत इतिहास सङ्कलन करने का भी इसमें पूरा प्रयत्न किया जा रहा है।

उपरोक्त तीनों भागों के सङ्कलन में बड़ी हिम्मत और धन की आवश्यक्ता है। इनके प्रकाशन और सङ्कलन में हजारों बल्कि लाखों रुपयों के व्यय और बहुत बड़ी आयोजना की जरूरत होगी। यह कार्य तभी सफल हो सकता है कि जब प्रत्येक पौरवाल बन्धु इस कार्य में तन, मन, धन से सहायता करे। हमें पूर्ण आशा है कि हमारे प्रत्येक पौरवाल बन्धु इस कार्य में हम से सहयोग और सहानुभूति प्रदर्शित करेंगे। परन्तु हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस विषय में अब तक पौरवाल समाज की तरफ से हमें कोई प्रोत्साहन नहीं मिला है और न अभी तक इतिहास को संग्रहित करने के लिये योग्य सम्मतिएं ही प्राप्त हुई हैं परन्तु कार्य जारी है पौरवाल बन्धुओं को इसकी तन मन धन से सहायता करना चाहिये।

सम्पादकगण—

पौरवाल हिस्ट्री पब्लिशिङ्ग हाउस,

सिरोही (राजपूताना)